फिर से पुराण

कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष

राधावल्लभ त्रिपाठी

ईसा के बाद की पूरी डेढ़ सहस्राब्दी में घटित होती गयी एक बड़ी धार्मिक क्रांति के साक्ष्य अठारह पुराणों और कई उपपुराणों के विशाल संसार में एक ओर अटूट धार्मिक आग्रह है, तो उसके साथ एक व्यापक सेकुलर दृष्टि भी है। उनके गर्भ से जाति और वर्णभेद के मुक़ाबले भक्तिकालीन समतामूलकता का आग्रह जन्मा। पुराणों ने ही हमें *रामायण* और *महाभारत* जैसे महाकाव्य दिये और हिंदू धर्म को ग्रहणशील बनाया। पुराणों के कारण ही वैदिक धर्म की यज्ञपरकता पूजापरकता में रूपांतरित हुई। इंद्र, वरुण, अग्नि, उषस् आदि वैदिक देवताओं के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रयी या महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली जैसी देवियाँ स्थापित हुईं। वेदों के देवता को प्रसन्न करना बहुत मुश्किल था, पर पुराणों के ये देवता उदार, क्षमाशील और वरदान-उत्सुक साबित हुए। अवतारवाद में आस्था, मंदिर, तीर्थयात्रा, यात्रामहोत्सव, तरह-तरह के उत्सव और त्योहार के विवरणों से भरपूर पुराणों में क्षेत्रीय परम्पराओं के साथ अलग-अलग समुदायों के रीतिरिवाजों के प्रचुर ब्योरे हैं। पुराण भारतीय समाज के एक बड़े हिस्से के करीब डेढ़ हज़ार साल के इतिहास, रीति-कुनीति, नीति-अनीति, सभ्यता और संस्कृति का अद्वितीय लेखा-जोखा हैं। पुराण कथित हिंदूधर्म की भव्यता, उत्सवधर्मिता, समन्वयभावना का जितना गहरा साक्ष्य देते हैं, उतने ही वे इस धर्म में आ गयी तमाम विकृतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कर्मकाण्डों के भी दस्तावेज़ हैं। अनेक पुराणों में ऐसी बातें हैं, जो आज अनर्गल लगती हैं। पण्डे पुजारियों ने अपने पेशे की दृष्टि से इनमें अनुकूलन और दुर्विनियोजन भी अनेक स्थलों पर किया है। लेकिन क्या इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र के अध्येताओं को पुराणों से अभी भी महत्त्वपूर्ण दुर्लभ जानकारियों और तथ्यों का ज़ख़ीरा नहीं मिल सकता? लेकिन, वासुदेव शरण अग्रवाल के बाद पुराणों पर कदाचित् कोई बड़ा शोध नहीं हुआ। पर क्या सारे के सारे पुराण अनर्गल हैं— जैसा दयानंद सरस्वती ऋषि बन जाने के बाद कहने लग गये थे? क्या पुराणों को केवल प्रवचनकर्ताओं और धर्म के नाम पर धंधा करने वालों के लिए छोड़ कर बिसार दिया जाना हमारे लिए उचित था?

आश्रमों और गुरुकुलों की पारम्परिक पाठ्यचर्या में चौदह विद्याओं की गिनती की जाती रही है— चार वेद, छह वेदांग, इतिहास, पुराण, न्याय और मीमांसा या धर्मशास्त्र। पुराण इस विद्या-परम्परा की ऐसी विधा है जो व्यापक रूप से जनसमाज में लोकप्रिय होने के बावजूद विद्वत्समाज में उपेक्षित होती रही है। साथ ही यह विद्या भ्रांतियों, संदेहों, दुर्व्याख्याओं से भी सर्वाधिक दूषित या ग्रसित है। देश के सोलह संस्कृत विश्वविद्यालयों में कम से कम तीन में पुराण के अध्ययन विभाग हैं, स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर पुराण का अध्यापन व शोध उनमें होता है। पर इस पाठ्यचर्या में पुराणों का बहुत सीमित व एकांगी अध्ययन होता है। अनेक विदेशी पण्डितों ने पुराणों पर महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किये हैं, लेकिन हिंदू समाज की ज़मीनी सच्चाइयों से सीधे परिचय के अभाव में वे भी एकपक्षीय हो गये हैं।

पुराण-साहित्य का आकार व संख्या में अत्यधिक विशाल होना, उनकी विषय-परिधि की भूमण्डलीयता तथा उनसे जुड़ी परम्पराओं का हमारे समय में विच्छेद— ये पुराणों के सही अध्ययन में बाधाएँ हैं। प्रस्तुत लेखक पुराणों का किसी भी तरह विशेषज्ञ नहीं है, इसलिए यहाँ पुराणों पर जो कहा जा रहा है, वह उसके सतही अध्ययन और अल्पज्ञान की प्रस्तुति ही होगी, और पुराणों के विपुल साहित्य की एक झलक भर इसमें दी जा सकेगी। साथ ही, इस लेख में केवल उन पुराणों की चर्चा ही की जा सकेगी, जिन्हें हिंदू धर्म से सम्बद्ध माना गया है। जैन धर्म और बौद्ध धर्म की परम्पराओं में उनके अपने पुराण हैं— वे भी महत्त्वपूर्ण हैं, पर वे इस लेख की परिधि के बाहर हैं।

तीन तरह के उपदेश

आचार्य-परम्परा में उपदेश तीन प्रकार का माना गया है— प्रभुसम्मित या मालिक की तरह दिया जाने वाला, सुहृत्सम्मित या दोस्त की तरह दिया जाने वाला तथा कांतासम्मित या प्रेयसी की तरह दिया जाने वाला। वेद प्रभुसम्मित उपदेश देते हैं। पुराण सुहृत्सम्मित उपदेश देते हैं। कविता कांतासम्मित उपदेश देती है। प्रभुसम्मित उपदेश शब्द प्रधान होता है। उसके शब्दों में राईरत्ती भी हेराफेरी नहीं हो सकती। सुहृत्सम्मित उपदेश अर्थ प्रधान होता है। उसमें बात को फैलाकर कई तरह समझाया जाता है। दृष्टांत और आख्यान को भी बात कहने का माध्यम बनाया जाता है। कांतासम्मित उपदेश न शब्दप्रधान होता है न अर्थप्रधान— वह प्रीति में पगा होता है, बारीक और गहरे इशारे करता है, और इन इशारों में भी कदाचित् वेद के आदेश तथा पुराण के संदेश को मन में उतार भी देता है।

पुराणों के प्रणेता

परम्परा में कवि और ऋषि को पर्याय माना गया है। वेदों में ऋषियों को कवि कहा गया है, कवियों को ऋषि। कवियों और ऋषियों की कोई जाति, मज़हब और वर्ण नहीं होता। कवि और ऋषि ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नहीं होते। प्रकारांतर से यह भी कह सकते हैं कि किसी भी देश का, किसी भी वर्ण, जाति या मज़हब का व्यक्ति कवि या ऋषि हो सकता है। धर्म के लिए भी माना जाता रहा है कि किसी वर्ण, जाति या मज़हब के लिए सीमित नहीं हैं, प्रकारांतर से कहें तो सब के लिए है। हमारे धर्म के लिए ब्राह्मणधर्म या ब्राह्मणवाद— यह नाम विदेशी विद्वानों का दिया हुआ है। हमारे पुरखों ने अपने धर्म को ब्राह्मणधर्म नहीं कहा। तथाकथित ब्राह्मणधर्म की नींव जिन्होंने रखी, वे जाति से ब्राह्मण नहीं थे। जिसे हम हिंदू धर्म कहते हैं, उसका उन महानुभावों से ज़्यादा लेना-देना नहीं है जो ब्राह्मणकुल में जन्म लेने के कारण अपने को ब्राह्मण कहते हैं। वेदों के ऋषियों ने यह कहीं नहीं कहा कि हम ब्राह्मणों के वंश में जन्मे हैं। वेद के ऋषि कहते हैं –

कारुरहं ततो भिषक् उपलपृक्षिणी नना। (*ऋग्वेद*, 09.112.03.)
(मैं एक बढ़ई हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी माँ कण्डे पाथने का काम करती है।)

वेदों के ऋषि उस समाज से भी आये, जिसे आज अंत्यज माना जाता है। मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों को मिला कर वेद कहा जाता है— मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। मंत्रों का संकलन *ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद* और *अथर्ववेद* इन चार संहिताओं में किया गया। इन चार संहिताओं में प्रत्येक के साथ ब्राह्मणग्रंथ जुड़े हुए हैं। ये ब्राह्मण मंत्रों की व्याख्या और व्याख्यापद्धति के विश्व-कोश हैं। पर इन ब्राह्मणग्रंथों के सारे प्रणेता भी वंश-परम्परा से ब्राह्मण हों, ऐसा नहीं है। *ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद* का ब्राह्मण है। इसके प्रणेता ऐतरेय महीदास इतरा दासी के पुत्र थे। उन्हें वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत होने के कारण उन्हें एक यज्ञ में प्रवेश करने से रोका गया था, पर वेद का प्रणयन करने के कारण वे ऋषि तो कहे गये। वेदों के अनेक ऋषि उन वर्गों से आये जो वर्णव्यवस्था के बाहर थे या वर्णव्यवस्था के उन स्तरों से नहीं आये थे, जिन्हें आज उच्च वर्ण या अगड़ी जातियाँ कहा जाता है। कवष, ऐलूष या सत्यकाम, जाबाल आदि अन्य ऋषियों के भी उल्लेख मिलते हैं, जो दासवर्ग से या वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत किसी वर्ग से आये थे।

वेद के ऋषियों की तरह पुराणों के प्रणेताओं और प्रवक्ताओं का भी उस वर्ग से कोई लेना देना नहीं है, जिसे वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण कहा गया। *महाभारत* और पुराणों के प्रणेता महर्षि व्यास पराशर और धीवरकन्या सत्यवती की संतान थे। धर्मशास्त्र के विधिविधान के अनुसार उन्हें किसी भी तरह जाति से ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। व्यास की शिष्य-परम्परा में उग्रश्रवा और रोमहर्षण आदि सूत थे। *महाभारत* को संसार के सबसे विशालकाल महाकाव्य के रूप में आकार सूतों के अवदान से मिला। ये सूत व्यास के सांस्कृतिक वारिस थे। *महाभारत* को परम्परा में इतिहास कहा गया है। इतिहास और पुराण दोनों के प्रणेता व्यास और संवर्धन करने वाले सूत लोग थे। कहीं-कहीं इतिहास और पुराण को एक भी मान लिया गया।

अठारह पुराणों में से हर पुराण के आरम्भ में बताया जाता है कि इस पुराण को नैमिषारण्य में सूत जी के मुख से शौनक आदि अठासी हज़ार ऋषियों ने सुना।

सूत पुराणों के आद्य प्रवक्ता, प्रणेता तथा आख्यायक हैं। कृष्णद्वैपायन व्यास जन्म से ब्राह्मण नहीं थे। किसी राजा के यहाँ पुरोहित का काम उन्हें करना नहीं था। वे उन लोगों के साथ प्राचीन कथाओं या आख्यानों का दस्तावेज़ीकरण करने के काम में लग गये, जो तरह-तरह के कामधंधे करने वाले शिल्पी, कारीगर या श्रमिक वर्ग के लोग थे, और कामधंधे के अलावा फुरसत के समय प्राचीन आख्यान, उपाख्यान आदि को कथाकथन कथागान की शैली में जन-समाज के सामने प्रस्तुत भी करते थे। व्यास ने सूतों के द्वारा कहे जाने वाले आख्यानों की जातीय विरासत का संकलन व व्यवस्थापन करने का काम किया। इस प्रक्रिया में *महाभारत* और अठारह पुराण तैयार हुए और वैदिक धर्म के बरअक्स पौराणिक धर्म विकसित हुआ। यह धर्म और संस्कृति के इतिहास में एक बड़ी क्रांति थी। जो सूत यज्ञ और कर्मकाण्ड की व्यवस्थाओं में पुरोहितवर्ग का सहयोग करते थे, उन्होंने ही पुराणों के द्वारा नवीन धर्म की अवतारणा की।

यज्ञ से सूत का अनिवार्य संबंध रहा है। *यजुर्वेद* के तीसवें अध्याय में तो उन कारीगरों, शिल्पियों

वेदों के ऋषि उस समाज से भी आये, जिसे आज अंत्यज माना जाता है। ... ब्राह्मणग्रंथों के सारे प्रणेता भी वंश-परम्परा से ब्राह्मण हों, ऐसा नहीं है। *ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद* का ब्राह्मण है। इसके प्रणेता ऐतरेय महीदास इतरा दासी के पुत्र थे। ... वेदों के अनेक ऋषि उन वर्गों से आये जो वर्णव्यवस्था के बाहर थे या वर्णव्यवस्था के उन स्तरों से नहीं आये थे, जिन्हें आज उच्च वर्ण या अगड़ी जातियाँ कहा जाता है।

आदि की लम्बी सूची दी गयी है, जिनकी यज्ञ में उपस्थिति अनिवार्य थी। इनमें नृत्त के सूत और गीत के लिए शैलूष को बुलाने का निर्देश है— (नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषम्— आदि)। सूत नृत्त या नाट्य के साथ रथनिर्माण या बढ़ईगीरी का काम भी करते थे। वास्तु या स्थापत्य से भी सूतों का संबंध रहा है। सूत जाति के लोग वास्तुवेत्ता होने के कारण यज्ञवेदी तथा यज्ञमण्डप के निर्माण में भी सहयोग देते थे। सूत यज्ञवेदिका के निर्माण के लिए नापने की डोरी या सूत्र हाथ में लिए रहता था। इसलिए उसे सूत्रधार भी कहा गया। यही सूत्रधार या सूत नाटक का सूत्रधार भी हुआ।

यज्ञ में कहे जाने वाले आख्यानों के प्रस्तुतीकरण में भी सूतों की भूमिका रहती होगी— ऐसा अनुमान किया जा सकता है। आख्यान या पुराण को प्रस्तुत करने के कारण ही इनका एक नाम पौराणिक प्रचलित हुआ। *महाभारत* में जनमेजय के नागयज्ञ में यज्ञवेदी के निर्माण के लिए जिस सूत को बुलाया गया है, उसी को महर्षि व्यास ने स्थपति (स्थापत्य विद्या का जानकार), वास्तुविद्याविशारद, सूत्रधार तथा पौराणिक— इन चार विशेषणों से वर्णित किया है और उसकी बुद्धिमत्ता की सराहना भी की है—

स्थपतिर्बुद्धिसम्पन्नो वास्तुविद्याविशारदः।
इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा॥ (*महाभारत,* आदिपर्व, 51/15)

इस श्लोक में इति, अब्रवीत् और तथा इन तीन पदों के अतिरिक्त सारे शब्द एक ही सूत के लिए विशेषण हैं, अर्थात् एक ही सूत स्थपति भी है, बुद्धिसम्पन्न है, वास्तुविद्याविशारद भी है, सूत्रधार भी है तथा पौराणिक या पुराणों का प्रवचन करने वाला भी है। नीलकण्ठ ने इस स्थल पर अपनी टीका में उचित ही उस सूत को शिल्पग्रामवेत्ता कहा है। अन्य मांगलिक अवसरों पर भी सूत मल्ल-झल्ल नट नर्तक आदि के साथ उपस्थित होते थे। *महाभारत* में परीक्षित के पुनरुज्जीवन के अवसर पर मल्ल, नट, नर्तक आदि के साथ ग्रंथिक भी उपस्थित हुए। अन्य अवसरों पर भी ग्रंथिक राजसभा या जनसमाज में उपस्थित होते थे (*आश्व.* 69.4)। ग्रंथिक ग्रंथ से पढ़कर उपाख्यान सुनाते थे। यदि ग्रंथपाठ के साथ-साथ अभिनय व गायन भी किया जाए, तो यही उपाख्यान आख्यान बन जाता है। ग्रंथिक का उल्लेख पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में भी किया है, तथा भोज ने *शृंगारप्रकाश* में आख्यान और उपाख्यान को परिभाषित करते हुए भी ग्रंथिक का उल्लेख किया है।

रामायण और *महाभारत* के आख्यानों को कुशीलवों, ग्रंथिकों, सूतों व पौराणिकों के द्वारा जन-समाज के सम्मुख वाचिक परम्परा में प्रस्तुत किया जाता रहा। ये कुशीलव, ग्रंथिक, सूत व पौराणिक इन आख्यानों के मूल पाठ को यथावत् तो सुनाते ही थे, बीच-बीच में वे श्रोतृसमाज को साक्षात् सम्बोधित भी करते चलते थे, तथा श्रोताओं की रुचि देख कर किसी प्रसंग का विस्तार भी कर देते होंगे।

स्मृतियों के अनुसार क्षत्रिय पिता तथा ब्राह्मण माता का पुत्र सूत है।[1] प्रतिलोम (उच्चवर्ण की स्त्री का अपने से निचले किसी वर्ण के पुरुष से होने वाले) विवाह से उत्पन्न होने के कारण इसे प्रतिलोमज या विलोमज भी कहा गया है। *श्रीमद्भागवत* तथा बृहन्नारदीय पुराणों में सूत ने स्वयं अपने आप को विलोमज कहा है। वे इस बात पर गद्गद हैं कि उनके जैसे एक विलोमज से शौनक जैसे ऋषि गण पुराण को ले कर जिज्ञासा कर रहे हैं। *भागवत* के बारहवें स्कंध में मार्कण्डेय ऋषि के आख्यान के माध्यम से सृष्टि के रहस्य को जानने के लिए शौनक ऋषि सूत से निवेदन करते हैं, तो

---

[1] क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ॥ (*मनुस्मृति* 10.11)॥
राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः सूतो भवतीत्याहुः। (*वसिष्ठसंहिता,* अध्याय-18, *धर्मसंहितादशकम्,* भाग 2 : 993).

उनकी शब्दावली महाज्ञानी सूत के लिए कृतज्ञता के रस से छलक उठी है—

सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर।
तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः॥ (*भागवत,* 12.8,11)
(हे सूत, हे साधु, तुम चिरंजीवी बनो। तुम हमारे बीच वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हो।
आपार अंधकार में भटकते मनुष्यों को तुम पार दिखाने वाले हो।)

पुराणवाचन या पुराण के आख्यान (कहे जाने) की परम्परा में सूत जब पुराण सुना चुकते हैं, तो शौनक आदि ऋषिगण जो उन्हें व्यास के आसन पर बिठा कर उसके सामने नीचे धरती पर बैठ कर पुराण सुनते रहे हैं, उनकी वंदना करते हैं।

वर्णव्यवस्था में जन्म की दृष्टि से तो महाभारतकार कृष्णद्वैपायन व्यास पराशर ऋषि तथा धीवरकन्या के पुत्र होने से सूत से भी निचले स्थान पर रखे जा सकते हैं। पुराणों के प्रवक्ता या व्याख्याकार सूत इन्हीं की शिष्य-परम्परा में हुए। *महाभारत* में सूत का परिगणन नट, नर्तक, मागध, बंदी आदि के साथ भी किया गया है। पर पौराणिक या पुराणवेत्ता सूत विलोमज होते हुए भी अपनी विद्वत्ता के कारण इनमें पूज्य या श्रेष्ठ मान लिए गये थे। इसीलिए कौटिल्य मागध और पौराणिक सूत को अलग-अलग बताते हैं। यही नहीं वे तो पौराणिक सूत को वर्णसंकर होते हुए भी ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों से विशिष्ट भी घोषित करते हैं।

पद्म तथा वायु पुराणों में पुरातन काल से ही मान्य सूतों के धर्म प्रतिपादित किये गये हैं। तदनुसार देवताओं, ऋषियों या राजाओं के चरित या वंशावलियों को स्मरण रखना और उनका प्रवचन करना तथा इतिहास और पुराण का कथन सूत का धर्म है। सूत का यह धर्म वैदिक साहित्य में पहले बताया जा चुका था। इसी का अनुवर्तन पुराण करते हैं। *पद्मपुराण* सूतों को वेदाध्ययन का भी अधिकारी मानता है। आगे चल कर सूत शब्द प्रायः सारथि के अर्थ में सिकुड़ कर रह गया। कालिदास ने सूत शब्द का प्रयोग सारथि के अर्थ में किया है (*रघुवंश,* 3.42, *शाकुंतल* पहला अंक आदि) मनु ने सूतों का पेशा रथ हाँकना ही माना।[2] यह कुछ हद तक एक परवर्ती स्थिति है, अन्यथा वह एक विशिष्ट स्थिति है, जिसमें सूतों के कर्म या व्यवसाय को सीमित कर के देखा गया है।

पुराण कहने वाले कम से कम दो सूतों के नाम पुराणों में मिलते हैं— रोहर्षण और उग्रश्रवा। *महाभारत* के अनुसार रोमहर्षण अपने पुत्र उग्रश्रवा के साथ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित हुए थे। शर-शैया पर पड़े भीष्म से मिलने के लिए आने वालों में भी ये एक थे। *देवीभागवत पुराण* के अनुसार लोमहर्षण या रोमहर्षण व्यास के शिष्य तथा शुकदेव के सहाध्यायी थे। भागवत में वर्णित एक कथा में कहा गया है कि नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों को जब ये पुराण सुना रहे थे, उस समय बलराम ने इनकी हत्या कर दी। बलराम ने देखा कि कोई सूत ऋषियों के सामने उनसे ऊँचे आसन पर बैठा प्रवचन कर रहा है, तो उन्होंने चिल्ला कर रोमहर्षण को नीचे बैठने के लिए कहा। रोमहर्षण अपने प्रवचन में मगन थे, वे बलराम की चीख सुन नहीं पाए। बलराम ने उन पर अपना हल दे फेंका। रोमहर्षण ढेर हो गये। जो ऋषि पुराण सुन रहे थे, उन्होंने बलराम को धिक्कारा और बलराम ने पश्चात्ताप करते हुए ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त किया। *स्कंदपुराण* के अनुसार रोमहर्षण सूत ने सूतसंहिता तथा *ब्रह्मगीता* की रचना की। सूतसंहिता *स्कंदपुराण* में ही समाविष्ट है। यह कथा कुछ और पुराणों में भी आती है।

सूत आरम्भ से ही वर्णसंकर होते हुए भी वैदिक यज्ञ के अनुष्ठान में अनिवार्य भूमिका निभाते थे। यह परम्परा इतिहास और पुराणों के काल में भी जारी रही।

---

[2] सूतानामश्वसारथ्यं अम्बष्ठानां चिकित्सनम्।
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः॥ (*मनुस्मृति,* 10.47)॥

वस्तुत: साहित्य, कला और शिल्प की परम्परा के सम्पन्न बनाने में सूतसमाज का वैदिक काल से ही अपूर्व योगदान रहा। भागवत, विष्णु, वायु, पद्म, अग्नि, ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में भी सूत पुराणज्ञ के रूप में प्रशंसित हैं। उग्रश्रवा सूत को महामति तथा जगद्गुरु कहा गया है (*विष्णुपुराण* 3/ 4/ 10, *पद्मपुराण* 2/ 219/ 14,21)।

ब्रह्माण्ड (2/ 35/63–70) तथा वायु (61/ 55–62) का कथन है कि रोमहर्षण सूत के निम्नलिखित छह शिष्य हुए— आत्रेय सुमति, काश्यप अकृतवर्ण, भारद्वाज अंगिरस, वासिष्ठ मित्रयु, सावर्णि सोमदत्ति तथा शांशपायन सुशर्मन्। इनमें से काश्यप अकृतवर्ण, सावर्णि सोमदत्ति तथा शांशपायन ने अपनी अपनी पुराण संहिताओं की रचना की। रोमहर्षण द्वारा प्रणीत पुराणसंहिता को मिला कर इस तरह कुल चार मूल पुराण संहिताएँ हुईं।

आगे चल कर सूत को परम ब्राह्मण और विष्णु का अवतार तक मान लिया गया।[3] यह भी एक परवर्ती प्रक्षेप तथा ब्राह्मणवादी विनियोजन है। पर यह अवश्य सम्भाव्य है कि पुराणों के अनेक प्रवचनकार आगे चल कर वे लोग भी होने लगे, जो जन्म से ब्राह्मण माने जाते थे।

वस्तुस्थिति यह लगती है कि हर युग में एक व्यास होता आया, और हर नगर में एक व्यास हुआ करता था।[4] उसी तरह हर नगर में कुछ सूत या कथागायक होते थे। व्यास आलेख देते थे, सूत या कथागायक उसका विस्तार करते हुए उसे जनता के बीच पहुँचाते थे। यह प्राचीन भारत का एक अनोखा मीडिया तंत्र था, जिसने मानवीय स्पर्श के साथ एक व्यापक सूचना प्रौद्योगिकी को विकसित किया। लगभग अठारहवीं शताब्दी तक यह मीडिया और मानवीय सूचना प्रौद्योगिकी बरक़रार थे।

पुराणों का यह सारा आयोजन धर्मविमर्श, ज्ञान-विज्ञान, आख्यान, इतिहास, भूगोल आदि से ही नहीं विभिन्न शास्त्रपरम्पराओं की धरोहर से भी आम जनता को परिचित कराता था। व्यास और उनके अनुयायियों ने अनौपचारिक शिक्षा की जो व्यस्था क़ायम कर दी वह किसी राजकीय सत्ता पर अवलम्बित नहीं थी, इसलिए जनता व्यास और सूतों को सिर माथे पर बिठाती थी। इसे विश्व के आश्चर्यों में माना जाना चाहिए कि शिक्षा की यह निराली व्यवस्था जिसमें अपने समय की सत्ताओं को चुनौती देने की सामर्थ्य हो, डेढ़ हज़ार वर्षों तक इस देश में क़ायम रही। पुराण राजसत्ता और आडम्बरी धर्म की सत्ता के समानांतर एक प्रतिसत्ता रच सकते थे। *देवीभागवत पुराण* में कहा गया कि कृष्णदेवापयन व्यास ने व्रात्यों, द्विजबंधुओं, वेद के अनाधिकारियों, स्त्रियों तथा दुर्बुद्धियों को धर्मज्ञान कराने के लिए अठारह पुराणों की रचना की (1.1.15) —

स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च॥ (दे.भा. 1.3.21)

(स्त्रियों, शूद्रों तथा ब्रह्मबंधुओं (बहिष्कृत ब्राह्मणों) के लिए वेद सुनना वर्जित है, इसलिए इनके हित के लिए पुराण रचे गये।)

पुराण और व्रात्य

व्रात्य समाज का इतिहास रहस्य से आच्छादित है। अपने अवांछित आचरण के कारण यज्ञ के अधिकार व कर्मकाण्ड के अनुष्ठान से वंचित कर दिये गये ब्राह्मण को व्रात्य कहा गया है। *निघंटु* में व्रात्य का अर्थ दिया है- भ्रष्ट द्विज। एक मत के अनुसार व्रात्य घुमंतू क्षत्रिय थे।[5] स्मृतियों में व्रात्यों को

---

[3] कूर्मपुराण के बारहवें अध्याय में वेनपुत्र पृथु के यज्ञ में सूत के अवतार का निरूपण करते हुए कहा है— सूत: पौरणिको जज्ञे मायारूप: स्वयं हरि:. *अग्निपुराण* के पहले अध्याय में ब्रह्मा के द्वारा पुष्कर में किये गये यज्ञ से पौराणिक द्विज सूत की उत्पत्ति बताई गयी है. विष्णु, वायु आदि पुराणों में भी सूत और मागध दोनों की महिमा का गान करते हुए इन्हें पृथु के यज्ञ से उत्पन्न बताया गया है. (*शब्दकल्पद्रुम*, पाँचवाँ भाग : 392).

[4] *देवीभागवत* (1.3.26-33) में अट्ठाइस युगों में हुए अट्ठाइस व्यासों की सूची दी गयी है. इनमें अंतिम कृष्ण द्वैपायन हैं.

[5] षोडश विश्वसंस्कृत सम्मेलन, बैंकाक में प्रस्तुत कोर्नीवा नतालिया का लेख.

सावित्रीपतित कहा गया है।[6] (सावित्रीपतित मोटे तौर पर वह है, जो यज्ञोपवीत (जनेऊ) नहीं पहनता और वेद मंत्र का जप या पाठ नहीं कर सकता।) किंतु *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* में उनका वर्णन देवयान के लिए साधना करने वाले धार्मिक समूह के रूप में किया गया है। *अथर्ववेद* का पंद्रहवाँ काण्ड तो व्रात्यों को ही समर्पित है। अथर्वा ऋषि व्रात्य की गतिशीलता व पराक्रम का गुणगान करते हैं। वे व्रात्य को प्रजापति का प्रेरक बताते हैं। वे कहते हैं कि व्रात्य अपने पराक्रम से बढ़ता गया और महान् बना। व्रात्य की ऐसी महिमा होती चली गयी कि सारे देवता उससे पीछे रह गये और वह ईशान बन गया।

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत्। तमितिहासः पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद। (*अथर्ववेद*, 15/6/11)

यहाँ *अथर्ववेद* के मंत्रकार कहते हैं कि इतिहास, पुराण, च गाथाएँ और नाराशंसियाँ व्रात्य के पीछे-पीछे चलीं। चार वेद भी उसके पीछे चले यह नहीं कहते।

अथर्ववेद की शौनकसंहिता में इस स्थल की व्याख्या में कहा गया कि यज्ञ के उच्छिष्ट से पुराण बना।

आगे *अथर्ववेद* कहता है—

व्रात्य आसीदीयमान एवं स प्रजापतिं समैरयत् ।
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्यपश्यत् तत् प्राजनयत्॥
तदेकमभवत् तल्लाममभवत् तन्महदभवत् तज्जयेष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत्।
तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्रजायत॥
सोऽवर्धत् सो महानभवत् स महादेवोऽभवत्।
स देवानामीशां पर्येत् स ईशानोऽभवत॥
स एक व्रात्योऽभवत् सधनुरादत्त तदेवेन्द्रं धनुः।
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठं॥
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन।
द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति॥ (*अथर्ववेद* 15.1.1-8)

इस सूक्त में कहा गया है कि व्रात्य ही एक अकेला देव था, वही ललाम था, वही महत् हुआ, वही तप, सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। व्रात्य को नील उदर व लोहित पृष्ठ वाला कहा गया है।

अगले सूक्त में ही व्रात्य की वैश्विक यात्रा का वर्णन है, जिसमें बताया गया है कि सारे देवता उसके पीछे चले। *अथर्ववेद* के कवि व्रात्य का बड़ी ओजस्वी भाषा में वर्णन करते हुए कहते हैं कि व्रात्य उठ खड़ा हुआ और पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण दिशाओं में चलता गया, यज्ञ के कर्ता, यजमान व पशु उसके पीछे चलते गये, सभाएँ और समितियाँ, सेनाएँ और देवगण उसके पीछे-पीछे चलते चले गये। व्रात्य सारी दिशाओं में फैलता गया, और इतिहास-पुराण, गाथा नाराशंसियों का विस्तार उसने किया। *अथर्ववेद* के ऋषि यह भी कहते हैं कि व्रात्य इस तरह घूमता-घामता जिस किसी के घर के आगे जा पहुँचे, उस घर के लोग उसका अच्छी तरह अतिथि-सत्कार करते थे। डॉ. रति सक्सेना ने व्रात्य को शिव का पूर्वरूप माना है।

---

[6] द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत्॥
व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च॥
झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च॥
वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च॥ (*मनुस्मृति* 10. 20-23)॥
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः॥ (*याज्ञवल्क्यस्मृति* 1.38).

सायण ने *अथर्ववेद* पर भाष्य लिखा है, पर केवल व्रात्यसूक्त को उन्होंने छोड़ दिया। व्रात्य यज्ञविरोधी रहे हैं, और सायण यज्ञ के परम पक्षधर हैं। पर व्रात्य की व्याख्या सायण ने यह कहते हुए की है—'कञ्चिद विद्वत्तमं महाधिकारं पुण्यशीलं विश्वसम्मान्यं कर्मपरैर्ब्राह्मणैर्विद्विष्टं व्रात्यमनुलक्ष्य वचनमिति मंतव्यम्।' इससे स्पष्ट है कि सायण भले ही व्रात्य को प्रवृत्तिपरक धर्म का विरोधी होने से उनके माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाले सूक्त की व्याख्या करने से बचते हों, पर व्रात्य को वे एक महाज्ञानी पुण्यात्मा और माननीय तो अवश्य ही मानते हैं।

कतिपय विद्वानों ने व्रात्य को श्रमण संस्कृति से जोड़ा है। ये विद्वान् आर्य व आर्येतर के बीच द्वंद्व पर ज़ोर देते हुए *ऋग्वेद* में वातरशना:, शिश्नदेवा: आदि के उल्लेखों को भी व्रात्य और श्रमणपरम्पराओं से संबंधित बताते हैं। अन्य विद्वानों ने तो इंद्र और वरुण के बीच भी संघर्ष मान कर इंद्र को आर्यों का और वरुण को व्रात्यों तथा श्रमणों का देवता बता दिया है। *ऋग्वेद* में उल्लिखित ऋषभदेव को ये श्रमण-परम्परा का प्रथम प्रतिनिधि मानते हैं। पर इससे आगे जा कर ये विद्वान् वृत्रासुर व पणियों का भी संबंध व्रात्य परम्परा से मानते हैं, तो कुछ खींचातानी प्रतीत होती है।

व्रात्यों का संबंध कीकट या मगध देश से माना गया। मनु आदि स्मृतिकारों ने पूर्व या मगध जैसे देशों के निवासियों को इसीलिए अशुचि माना है।

प्राचीन वैदिक साहित्य में इस बात के भी साक्ष्य मिलते हैं कि व्रात्य तपस्वी, अपरिग्रही और संयमी होते थे। एक मत के अनुसार सुरापान करने वाले सुर तथा सुरापान न करने वाले असुर कहे गये। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में कहा गया है— यस्य पितापितामहादि सुरां न पिबेत् स व्रात्य:।'

यह भी सत्य है कि व्रात्य वैदिक समाज की मुख्यधारा के बाहर थे। उन्हें मुख्यधारा में सम्मिलित करने के लिए व्रात्यस्तोम यज्ञ का विधान किया गया। व्रात्यस्तोम के अनुष्ठान के द्वारा कोई व्रात्य आर्य बन जाता है— यह माना गया।

परवर्ती साहित्य में व्रात्य को संस्कारवर्जित और पतित मान लिया गया। हेमचंद्र नाममाला (3.518) में कहते हैं— व्रात्य: संस्कारवर्जित:। संस्कारोऽत्र उपनयनं तेन वर्जित:।'

दूसरी ओर वर्तमान में चल रहे दलित-विमर्श में वैदिक व्रात्य को दलित परम्परा से जोड़ कर भी देखा गया है। बंगाल के राय चरण दास पौंड्र जाति में पैदा हुए। उन्होंने 1910 में *व्रात्य बांधव* का प्रकाशन किया।[7] अनिल सरकार ने अपने काव्य संग्रह की शीर्षक ही *ब्रात्य जनेर कविता* रखा।[8]

वेद से पुराण का संबंध

पुराण का सामान्य अर्थ प्राचीन है। प्राचीनता तथा महत्त्व में पुराण वैदिक संहिताओं के समान माने गये हैं। *अथर्ववेद* में कहा गया है कि पुराणों का उद्भव ऋक्, यजु: तथा साम इन तीन वैदिक संहिताओं के साथ ही हुआ। *शतपथब्राह्मण* में तो पुराण को भी वेद ही बताया गया है। *अथर्ववेद* में भी कहा गया है कि तीन वैदिक संहिताओं के साथ ही पुराण की भी अनादिकाल से ही उत्पत्ति हो चुकी थी—

ऋच: सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित:॥

बृहदारण्यक उपनिषद् में वेद के साथ इतिहास और पुराण को परमात्मा के नि:श्वास से निर्गत बताया गया है— अस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितमेतद् यदृग्वेदो *यजुर्वेद:* सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस: पुराणम्...। (*बृहदारण्यक उपनिषद्* 2.4, उपनिषत्सङ्ग्रह:, पृ. 68)

शंकराचार्य इस स्थल पर 'नि: श्वसित' की व्याख्या में अपने भाष्य में कहते हैं— जैसे मनुष्य

---

[7] बांग्ला दलित साहित्य सम्यक् अनुशीलन, बजरंग बिहारी तिवारी : 32, *प्रतिमान,* जुलाई-दिसम्बर, 2016 वर्ष 4 अंक 8 में प्रकाशित— *मैनेजर पाण्डेय के लेख दलित साहित्य : एक सर्व भारतीय चित्र* : 114 पर उद्धृत.

[8] वही.

सहज रूप से साँस छोड़ता है, ऐसे ही बिना प्रयास के परम पुरुष के द्वारा वेद आदि रच दिये गये। शंकराचार्य के अनुसार सृष्टि की प्रक्रिया बताने वाले वचन पुराण हैं।

पुराण को वेद का उपबृंहण करने वाला बताया गया है। *महाभारत* तथा *वायुपुराण* में कहा गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥
(*महाभारत,* 1.1.287 तथा *वायुपुराण,* 1.281)

उपबृंहण का अर्थ है व्याख्या करते हुए विस्तार देना। इतिहासपुराणानि वेदानामुपबृंहणम्— यह उक्ति प्रसिद्ध है। वेदों में प्रतिपादित प्रभुसम्मित उपदेशों को ही मित्र की भाँति पुराण समझाते हैं— यह परम्परागत मान्यता रही है। वेद के अनेक आख्यानों ने पुराणों में उपबृंहित हो कर रोचक कथाओं का रूप ग्रहण कर लिया है। *महाभारत* में पुराणों को वेदों के प्रकाशक भी कहा गया है। पुराण उस पूर्णचंद्र के समान हैं, जो श्रुतिरूपी ज्योत्स्ना को प्रकाशित करता है— 'पुराणपूर्णचंद्रेण श्रुतिज्योत्स्ना प्रकाशिता।' कूर्मपुराण में कहा गया है- 'पुराणं धर्मशास्त्रं च वेदानामुपबृंहणम् ।'

पुराण किस तरह वेदों का उपबृंहण करते हैं, इसके उदाहरण के लिए *शतपथब्राह्मण* में देवासुरसंग्राम का यह प्रसंग लें :

> देव और असुर दोनों ही प्रजापति की संतान थे। दोनों झगड़ पड़े। उस झगड़े में देव हार गये। तब असुरों ने सोचा— अब यह धरती हमारी हो गयी। उन्होंने एक दूसरे से कहा— आओ, हम इस धरती को आपस में बाँट लें और इससे गुज़ारा करें। उन लोगों ने बैल का चमड़ा लिया और पूर्व से पश्चिम तक नापना आरम्भ किया। देवताओं को पता चला कि असुर तो धरती को बाँट ले रहे हैं। उन्होंने कहा कि हम भी वहीं चलते हैं, यदि हमें धरती का हमारा हिस्सा न मिला तो हम क्या करेंगे? उन्होंने यज्ञरूपी विष्णु को आगे कर लिया, और असुरों से बोले हमें भी धरती में से हमारा हिस्सा दो। असुरों ने असूया से भर कर कहा— नाप लो, जितना यह विष्णु नाप सके, उतना हिस्सा हम दे देंगे। विष्णु वामन थे। ...अब देवता आपस में सलाह करने लगे कि असुरों ने हम को केवल यज्ञ या विष्णु के लिए स्थान दिया है। फिर उन्होंने विष्णु को पूर्व की और स्थापित कर छंद से ढक लिया, वे विष्णु से बोले— हम तुम को दक्षिण दिशा में गायत्री छंद से, पश्चिम में त्रिष्टुप् छंद से, उत्तर में जगती छंद से परिवेष्टित करते हैं। इस तरह विष्णु को चारों ओर छंद से परिवेष्टित कर के उन्होंने पूर्वदिशा में अग्नि को स्थापित कर के यजन किया, और श्रम करते-करते आगे बढ़ते गये। इस तरह उन्होंने सारी धरती प्राप्त कर ली।

वेदों के इस तरह के वर्णनों या प्रसंगों को आधार बना कर विष्णु के द्वारा वामनावतार में तीन पगों से धरती, अंतरिक्ष को माप लेने का आख्यान रचा गया है, जो भागवत, वामन आदि अनेक पुराणों में निरूपित है। विष्णु के तीन पदों (क़दमों) का उल्लेख *ऋग्वेद* के विष्णुसूक्त में हुआ है। *ऐतरेयब्राह्मण* (6.15) तथा *शतपथब्राह्मण* (1.1.2.13, 2.5, 9.3) आदि में तो इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया कि विष्णु अपने इन तीन पगों से असुरों को नीचे भगा देते हैं। ये सारे उल्लेख वामन अवतार के बड़े आख्यान में विस्तारित होते गये हैं।

इसी प्रकार वैदिक सृष्टिविद्या में भूः, भुवः स्वः (पृथ्वी, अंतरिक्ष व स्वर्ग) इस त्रिलोकी का प्रतिपादन हुआ है। पुराणों में इनके आधार पर त्रिपुर या तीन नगरों की कथा गढ़ी गयी व शिव द्वारा त्रिपुरासुर से संहार का आख्यान रचा गया। *शतपथब्राह्मण* (14.1.2.11) में एमूष नामक वराह के द्वारा पृथ्वी को ऊपर उठने का वृत्तांत वर्णित है। यह वृत्तांत वराहावतार की कथा के रूप में पुराणों में विकसित हुआ है। *शतपथब्राह्मण* में ही मनुमत्स्यकथा व जलप्रलय का निरूपण है, जो मत्स्यावतार की परिकल्पना व उससे जुड़ी समस्त कथाओं का स्रोत है। वास्तव में तो ब्राह्मणग्रंथों में निरूपित शुनःशेप, पुरूरवोर्वशी आदि अनेक आख्यान पुराणों ही नहीं संस्कृत साहित्य की परम्परा में संक्रांत हुए हैं।

पुराणों में वेदों के आख्यानों का अनेकत्र विस्तृत रूप प्रयोग किया गया है। इनमें वैदिक मंत्रों को भी प्रकारांतर से या यत्किंचित् परिवर्तन के साथ दोहराया गया है। उदाहरण के लिए *वायुपुराण* में

शिवस्तुति में रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों के पद गुम्फित हैं। इसी प्रकार भागवत के द्वितीय स्कंध में *ऋग्वेद* के पुरुषसूक्त की पंक्तियाँ उद्धृत की गयी हैं। पुरुषसूक्त की ही 'स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्' को विष्णुपुराण में कुछ परिवर्तन के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

सर्वव्यापी भुवः स्पर्शादत्यतिष्ठद्दशाङ्गलम्।

पद्मपुराण में गायत्री मंत्र को इस प्रकार 'प्रचोदयात्' के स्थान पर प्रभाति क्रिया का प्रयोग कर के कृष्ण के लिए प्रयुक्त किया गया है। *यजुर्वेद* के 'वेदाऽहमेतम्'— इत्यादि मंत्र को *स्कंदपुराण* में शिव के लिए प्रयुक्त किया गया है। पुराणों ने वेदों की व्याख्या दार्शनिक धरातल पर भी की। *ऋग्वेद* के द्वासुपर्णा मंत्र को भागवत में इसी दृष्टि से मनोहर रूप में पुनर्विन्यस्त कर के कहा गया है—

सुपर्णावेतौ सयुजौ सखायौ
यदृच्छयेतौ कृतनीडौ च वृक्षे।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्य—
न्यमन्यो निरपेक्षोऽपि बलेन भूयान्॥ (*श्रीमद्भागवत,* 11.2.16)।

कहीं कहीं पुराणों ने वैदिक मंत्रों की धार्मिक या सम्प्रदाय की दृष्टि से भी व्याख्या की है। उदाहरण के लिए *पद्मपुराण* में हिरण्यगर्भ सूक्त की कृष्णपरक व्याख्या की गयी है। हिरण्यगर्भ को यहाँ विष्णु का ही विशिष्ट रूप माना गया है। इसी प्रकार *ऋग्वेद* के ही 'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा' इत्यादि मंत्र की भागवत में अष्टम स्कंध में यज्ञपरक व्याख्या की गयी है। *स्कंदपुराण* के काशीखण्ड में इसी मंत्र का शिवपरक अर्थ किया गया है।

6. पुराणलक्षण

पुराण का निरुक्तकार यास्क ने यह लक्षण दिया है— पुरा नवं भवति (*निरुक्त,* 3.19.24)— जिसमें पुराना नया हो जाता है। प्राचीन होते हुए भी जो परम्पराएँ नये युग में सार्थक बनी रहें , उनका संग्रह पुराण है। इस दृष्टि से वायु पुराण में पुराण की रोचक व्युत्पत्ति दी गयी है— यस्मात् पुरा ह्यनति— जिसे अतीत साँस लेता हुआ या सजीव हो जाए वह पुराण है।

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन चोच्येत॥ (*वायुपुराण.,* 1.2)

सायण ने सृष्टि की उत्पत्ति व विकास का प्रतिपादन करने वाले साहित्य को पुराण कहा है। शंकराचार्य और मधुसूदन सरस्वती सृष्टि के इतिहास को पुराण मानते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से पुराण के पाँच लक्षण प्रसिद्ध माने गये हैं। *अमरकोश* में भी कहा गया है— 'पुराणं पञ्चलक्षणम्।' ये पाँच लक्षण *वायुपुराण* तथा कूर्मपुराण में इस प्रकार बताए गये हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मंवंतराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

(अर्थात् सर्ग या सृष्टि-प्रक्रिया, प्रतिसर्ग या पुनःसृष्टि, देवता या ऋषियों के वंश का वर्णन, मन्वंतर या मनुओं के शासन का काल, वंशानुचरित या क्षत्रिय राजाओं का जीवन — ये पाँच पुराण के लक्षण हैं।)

ब्रह्मवैवर्तपुराण (142.35-37) में पुराणों के विषय विस्तारित करते हुए दस विषय बताए गये हैं- सृष्टि, प्रलय, स्थिति, पालन, कर्म, वासना, मन्वंतर, मोक्ष, ईशगुणानुवर्णन तथा देवगुणानुवर्णन। श्रीमद्भागवत में भी पुराणों की पंचलक्षणी दशलक्षणी के रूप में विस्तारित हो गयी है।

पद्मपुराण के अनुसार जो पुरावृत्त या परम्परा की व्याख्या करें, वह पुराण है —

पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम् ॥ (*पद्मपु.,* 5.2)

पुराण और आख्यान

आख्यान शब्द क़िस्सागोई के लिए भी आया है। जिस समय वेद लिखे जा रहे थे, सृष्टि और प्रलय के बारे में प्रचलित कथाएँ, राजाओं या महानायकों की जीवनगाथाएँ लोकप्रिय साहित्य के रूप में प्रचलित थीं। यह वाचिक परम्परा का साहित्य था, ये कथाएँ और गाथाएँ कही सुनी जाती थीं या गायी जाती थीं। वेदों

में भी इन कथाओं और गाथाओं को संकलित और सुरक्षित किया गया। यज्ञ के अनुष्ठान का अंग भी इन्हें बनाया गया। विशेष रूप में अश्वमेध यज्ञ में दिग्विजय के लिए अश्व छोड़ दिये जाने के बाद जिस स्थान पर यज्ञ आरम्भ हुआ था, और लगभग एक वर्ष बाद दिग्विजय के पश्चात् उस अश्व के लौट कर आने के बाद यज्ञ की पूर्णाहुति की जाती थी, वहाँ अश्व के विसर्जन और परावर्तन के बीच की एक वर्ष की अवधि में पारिप्लव नामक आख्यान कहे और सुने जाते थे। पारिप्लव का अर्थ है, सतत बहता रहने वाला। निरंतर कहे जाते रहने के कारण ऐसे आख्यानों को पारिप्लव आख्यान कहा गया होगा।

महाभारत के लिए भी 'आख्यान' शब्द का प्रयोग किया गया है तथा इसके अंतर्गत समाविष्ट प्राचीन कथाओं के लिए 'उपाख्यान' शब्द व्यवहृत है। नलोपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान आदि *महाभारत* के प्रसिद्ध उपाख्यान हैं।

उपाख्यान तथा आख्यान के संबंध और अंतर को भोज ने स्पष्ट किया है। उनके अनुसार–

नलसावित्रीषोडशराजोपचारवत्प्रबन्धान्तः।
अन्यप्रबोधनार्थं यदुपाख्याति तदुपाख्यानम्॥
आख्यानसत्तां तल्लभते यद्यभिनयन् पठन् गायन्।
ग्रन्थिक एकः कथयति गोविन्दवदवहिते सदसि॥

इसके अनुसार किसी प्रबंध के अंतर्गत किसी पात्र को उद्‌बोधन देने के लिए कोई दूसरा पात्र जब कोई पुरानी कथा दृष्टांत के रूप में सुनाए, तो यह उपाख्यान माना जाना चाहिए, जैसे नल–सावित्री आदि के उपाख्यान। ये उपाख्यान *महाभारत* में किसी पात्र को संदेश या शंकासमाधान के लिए सुनाए गये हैं। यही उपाख्यान जब किसी ग्रंथिक (ग्रंथ से पढ़ कर सुनाने वाले) के द्वारा पाठ, अभिनय, गायन के साथ प्रस्तुत किया जाता है, तो वह आख्यान बन जाता है।

इससे प्रतीत होता है कि आख्यान उपाख्यान का ही नाट्यरूप है। परंतु प्राचीन परम्परा में आख्यान और उपाख्यान के बीच इस प्रकार का अंतर नहीं किया गया है और आख्यान शब्द उपाख्यान की अपेक्षा अधिक प्राचीन और व्यापक भी है। वैदिक काल से ही प्राचीन कथाओं को कहने की विधा के लिए आख्यान शब्द चल पड़ा था और आख्यान अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता था। वेद और वेदाङ्गों के साथ आख्यानों का अध्ययन व अध्यापन होता था। छान्दोग्य उपनिषत् में वेद आदि के साथ आख्यान को पढ़ने–पढ़ाने का अनेकत्र उल्लेख है तथा आख्यान को पाँचवाँ वेद भी कहा गया है—

अधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गानाख्यानपञ्चमान्।— छा., 7.9.20
वेदानध्यापयामास साङ्गानाख्यानपञ्चमान्।— वही, 1.63.89
साङ्गोपनिषदान् वेदांश्च चतुराख्यानपञ्चमान्।— वही, 3.45.8

रामायण तथा *महाभारत* में भी किसी प्राचीन बड़ी कथा के लिए आख्यान शब्द प्रयुक्त है और ये दोनों ग्रंथ भी आख्यान कहे गये हैं।[9]

यास्क ने वेद के कुछ सूक्तों को भी इतिहास और आख्यान की संज्ञा दी है (*निरुक्त,* 11.25)। ब्राह्मण ग्रंथों में भी वेद में उल्लिखित कुछ प्रसंगों, जैसे शुनःशेप का प्रसंग, को आख्यान कहा गया है।

ऋग्वेद में ऐसे आख्यानों का उल्लेख है तथा ब्राह्मणों में उनका संकलन व पल्लवन किया गया

---

[9] श्रूयतामिदमाख्यानमनयोर्देववर्चसोः। — *रामा.,* 1.4.1
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥ —*रामा.,* 1.5.3
सर्वमेतत् पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः। —वही, 6.153.119, 7.11.4
साङ्गोपनिषदान् वेदान् चतुराख्यानपञ्चमान्। —*मभा.,* वन., 55.1
योऽधीते चतुरो वेदान् सर्वानाख्यानपञ्चमान्। — वही, द्रोण., 1.31
वेदानाख्यानपञ्चमान्। — वही, कर्ण., 1.44
तस्याख्यानवरिष्ठ्य। — वही, आदि., 1.24

है। मनु को महामत्स्य के द्वारा प्रलय से बचाने का आख्यान, जो भारत में ही नहीं अन्य देशों के मिथकों में भी प्रचलित है, *शतपथब्राह्मण* (1.8.1) में विस्तार से बताया गया है। इसी प्रकार असुरों के द्वारा तीन नगर बसाने का आख्यान, जो त्रिपुरदाह की प्रसिद्ध कथा के रूप में विकसित हुआ *शतपथ* (3.4.4) और *ऐतरेयब्राह्मण* (1.2.3) में वर्णित है। हरिश्चंद्र के द्वारा अपने पुत्र रोहित को वरुण की बलि बनने से बचाने के लिए उसके विकल्प में पशु की खोज तथा शुन:शेप नामक ब्राह्मण बालक को बलि के लिए ले जाना, विश्वामित्र के द्वारा शुन:शेप की रक्षा— यह कथा बहुत परिवर्तित हो कर सत्यहरिश्चंद्र की पौराणिक कहानी में ढल गयी। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में 52वें से 65वें अध्याय तक विश्वामित्र का आत्मवृत्तांत है, इसमें राजा हरिश्चंद्र अंबरीश बन गये हैं, शुन:शेप की बलि के प्रसंग के अनुरूप है। पुराणों ने वरुण के आगे बार-बार अपने वचन से मुकरने वाले हरिश्चंद्र को सत्यप्रतिज्ञ बना दिया। *अथर्ववेद* में राजा पृथु के द्वारा गोरूप पृथ्वी के दोहन का उल्लेख है, जिसे *महाभारत* और पुराणों ने एक बड़े आख्यान के रूप में पल्लवित किया। *ऋग्वेद* में आकाश में दिखने वाले नक्षत्रीय दृश्य के वर्णन में आयुष् के पुत्र नहुष का उल्लेख है। *ऋग्वेद* 10.92.12 में साल के बारह महीनों का सूर्य से संबंध बताते हुए नहुष से उन्हें संबंधित बताया गया है। सम्भवत: ययाति वेदों में आकाश का कोई तारा है। इसके पाँच पुत्रों का भी *ऋग्वेद* में आकाश के नक्षत्रों के रूप में वर्णन है।[10] इस तरह के उल्लेख पुराणों में कहीं ययाति तो कहीं पुरूरवा और उर्वशी की कथा में ढल गये हैं। एक इस तरह आख्यान वेद और पुराणों को जोड़ने वाली एक कड़ी है। पुराणों से इसका इतना गहरा संबंध रहा है कि परम्परा में आख्यान और पुराण को पर्याय भी मान लिया गया।

इतिहास और पुराण

आख्यान की तरह ही इतिहास और पुराण का भी परस्परानुप्रविष्ट अंत:संबंध रहा है। बल्कि इनकी परिभाषाओं में घालमेल बहुत हुआ है। न्यायभाष्यकार वात्स्यायन इतिहास और पुराण दोनों का विषय लोकवृत्त बताते हैं। (न्यायभाष्य 4.1.61)। *बृहदारण्यकोपनिषद्* (2.4.10) पर अपने भाष्य में शंकराचार्य कहते हैं कि *ऋग्वेद* में पुरूरवा और उर्वशी का संवाद इतिहास है, इसी वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि के पहले कुछ भी नहीं था— इत्यादि के द्वारा जो सृष्टि के निर्माण पर विचार है वह पुराण है।

शतपथब्राह्मण (13.4.3) की व्याख्या में सायण शंकराचार्य की बात को उलट कर कहते हैं कि सृष्टि कैसे बनी आरम्भ में क्या था और फिर क्या हुआ— इस तरह का निरूपण इतिहास है और पुरूरवा तथा उर्वशी की कथा पुराण है। परम्परा में इतिहास और पुराण दोनों को ही पुरावृत्त कहा गया। *महाभारत* की टीका में नीलकण्ठ ने भी पुराण और पुरावृत्त को पर्याय बताया है। *महाभारत* को इतिहास की संज्ञा दी गयी है, कहीं कहीं इसे पुराण भी कहा गया है। स्वयं *महाभारत* में ही इस ग्रंथ को परिभाषित करते हुए कहा गया कि यह परम ऋषि कृष्ण द्वैपायन का कहा हुआ पुराण है।

द्वैपायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा। (*मभा.* 1.5.1)

राजशेखर इतिहास को चार वेदों में से एक वेद बताते हैं, तथा यह भी कहते हैं कि कुछ लोग इतिहास को पुराण का ही एक भेद मान लेते हैं।[11]

वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में पुराण और इतिहास को अभिन्न मान लिया गया है। *पद्मपुराण* में कहा गया कि इस इतिहास (*पद्मपुराण*) का पाठ शांडिल्य मुनि चित्रकूट में करते रहते थे। ऊपर *अथर्ववेद* का उद्धरण दिया गया है, जिसमें इतिहास, पुराण और गाथा-नाराशंसी आदि के द्वारा महापुरुष व्रात्य का अनुसरण करने की बात कही गयी है। यह बात ध्यान देने की है कि इन सभी उद्धरणों में

---

[10] *वायुपुराण*, इलाहाबाद, 1987, भूमिका : 7-8.

[11] *काव्यमीमांसा, कविरहस्य,* प्रथम अधिकरण, द्वितीय अध्याय

इतिहास और पुराण को एकवचन में रखा गया है। एक ही इतिहास है एक ही पुराण है, जब कि *अथर्ववेद* में गाथा और नाराशंसी के लिए बहुवचन का प्रयोग किया गया है। एक पुराण और एक इतिहास से अनेक पुराण और अनेक इतिहास कालांतर में बनते गये।

पुराणों की संख्या और नामावली

वेद जिस तरह एक था, और वेदव्यास ने इसे संकलित करके तीन या चार अलग अलग संहिताओं (संकलनों) में वर्गीकृत रूप में सम्पादित किया, उसी तरह मूलतः पुराण भी एक ही था। इसका विकास विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न धार्मिक परम्पराओं में होते-होते संख्या वृद्धि होती गयी। पुराण अठारह हुए, उसके बाद भी उनकी संख्या बढ़ती रही, अठारह उपपुराण माने गये और उसके पश्चात् अठारह औपपुराण भी रचे गये। अठारह पुराणों को महापुराण भी कहा जाता है। महापुराण कौन-कौन से हैं, इस विषय में अलग-अलग मत हैं। एक पारम्परिक श्लोक में अठारह पुराण इस प्रकार गिनाए गये हैं—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥ (*देवीभागवत*, 1.13.2)

(अर्थात् दो पुराणों के नाम मकार से आरम्भ होते हैं- मत्स्य और मार्कण्डेय, दो के भकार से आरम्भ होते हैं— (भविष्य तथा भागवत), तीन के नाम 'ब्र' से आरम्भ होते हैं- ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, तथा ब्रह्मवैवर्त), चार के नाम में पहला अक्षर 'व' है- वामन, विष्णु, वराह तथा वायु। शेष सात पुराणों के नाम अ, ना, प, लिङ् ग, कू व स्क— इन अक्षरों से आरम्भ होते हैं। अ से अग्नि, ना से नारद, प से पद्म, लिङ् से लिङ्ग, ग से गरुड, कू से कूर्म और स्क से स्कंद। इस प्रकार अठारह पुराण होते हैं। *श्रीमद्भागवत* में अठारह पुराण इस प्रकार गिनाए गये हैं—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडं
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम्
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेय सवामनम्
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् (*भागवत,*12.7.231)

देवी भागवत और भागवत की ही सूचियों में अंतर है। *शाक्तपुराण* होते हुए भी *देवीभागवत* की सूची में शिव या शैव पुराण को जगह नहीं मिली, जब कि भागवत की सूची में *शैवपुराण* है।

डॉ. फरकूहर ने अपने ग्रंथ *आउटलाइन ऑफ़ रिलिजस लिटरेचर ऑफ़ इण्डिया* में *शिवपुराण, हरिवंशपुराण* को जोड़ कर प्रमुख पुराणों की संख्या अठारह के स्थान पर बीस मानी है। परम्परासम्मत न होने से यह मान्यता अग्राह्य है।

पुराणों का रचनाकाल

मूल रूप में पुराण वेद के समान ही प्राचीन हैं, पर अलग-अलग पुराणों की रचना अलग-अलग समयों में हुई। इन विभिन्न पुराणों का रचना काल 600 ई.पू. से लेकर 1000 ई. तक निर्धारित किया जाता रहा है। *महाभारत* वनपर्व (191.16) में *वायुप्रोक्तपुराण* का उल्लेख है। इस दृष्टि से कतिपय पुराण *महाभारत* के वर्तमान संस्करण से पहले के हो सकते हैं। कुछ पुराणों में प्रक्षिप्त अंश बाद में भी जुड़ते रहे। पुराणों के रचना काल के विषय में सामान्यतः निम्नलिखित प्रमाण दिये जाते हैं—

(1) धर्मसूत्रों में उल्लेख— कुछ पुराणों का विभिन्न धर्मसूत्रकारों ने नामतः उल्लेख किया है। गौतम (छठी शताब्दी ई.पू.), बोधायन (पाँचवीं शताब्दी ई.पू.) तथा कौटिल्य (चौथी शताब्दी ई.पू.) ने विभिन्न पुराणों से उद्धरण दिये हैं। *आपस्तंब धर्मसूत्र* में पुराण से दो पद्य उद्धृत हैं, तथा एक पद्य *भविष्यपुराण* का भी उद्धृत किया गया है।

(2) पुराणों में ऐतिहासिक उल्लेख — *भागवत* तथा *विष्णु* आदि पुराणों में मौर्यवंशीय राजाओं (326 ई.पू.) से 180ई.पू.), *मत्स्यपुराण* में आंध्रवंशीय राजाओं (225 ई.) तथा *वायुपुराण* में गुप्त

वंशीय राजाओं के वर्णन हैं। पर पुराणों में हर्षवर्धन तथा 600 ई. के पश्चात् के भारतीय इतिहास का वर्णन प्राय: नहीं मिलता, *भविष्यपुराण* जैसे इक्के-दुक्के पुराण इसके अपवाद हैं।

(3) धर्मशास्त्रों में पुराण का उल्लेख— *मनुस्मृति* से सुस्पष्ट विदित होता है कि इस स्मृति के रचनाकाल के समय पुराण घर-घर में पढ़े और सुनाए जाते थे। मनु ने निर्देश दिया है—

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥ (*मनु.* 3.232)

बालगंगाधर तिलक पुराणों की रचना का समापन काल दूसरी शताब्दी के लगभग मानने के पक्ष में हैं। पुराणों के रचनाकाल के संबंध में श्री आर.सी. हाजरा का अनुसंधान कार्य महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने विभिन्न पुराणों का समय इस प्रकार निर्धारित किया है —

विष्णुपुराण— तीसरी चौथी शताब्दी ई.
मार्कण्डेय और *ब्रह्मांडपुराण*— तीसरी से पाँचवीं शताब्दी ई. के बीच
वायुपुराण — पाँचवीं शताब्दी ई.
भागवतपुराण— छठी शताब्दी ई. के आसपास
ब्रह्मवैवर्त तथा *कूर्मपुराण*— 700 ई.के आसपास
अग्निपुराण — 800 ई. के लगभग।
स्कन्द, गरुड़ और *ब्रह्मपुराण*— आठवीं शताब्दी
नारदीयपुराणम्— दसवीं शताब्दी के लगभग

बाणभट्ट (सातवीं शताब्दी) ने अपने *हर्षचरित* में बताया है कि उन्होंने अपने गाँव में *वायुपुराण* का पाठ सुना था। *कादम्बरी* में भी उन्होंने पुराणेषु वायुप्रलपितम् इस परिसंख्या के द्वारा पुन: *वायुपुराण* के पाठ का संकेत दिया है। कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य ने पुराणों से उद्धरण भी दिये हैं। इससे लगता है कि नवीं शताब्दी तक सारे मुख्य पुराण पठनपाठन में प्रचलित हो चुके थे।

पुराणों का विभाजन

उपास्य देव के अनुसार पुराणों का शैव, वैष्णव, तथा ब्राह्म ये तीन प्रकार माने गये हैं। कहीं सात्त्विक, राजस तथा तामस के रूप में पुराणों का त्रिविध विभाजन भी प्रतिपादित है।

पुराणों की विषयवस्तु

पुराणों में प्रतिपादित विषयों का परिचय उपर्युक्त पंचलक्षण से मिल जाता है। इसके अतिरिक्त स्वर्ग-नरक-वर्णन, अनुष्ठान, व्रत, धर्मशास्त्र के नियम, प्रायश्चित्त, भूगोल, तीर्थस्थान, लोकाचार, विभिन्न शास्त्र— आयुर्वेद, गांधर्व, काव्यशास्त्र आदि का भी निरूपण पुराणों में किया गया है।

वास्तव में तो महापुरुषों के प्रेरणाप्रद चरित्रों को समाज के सामने रखना पुराणों का मुख्य उद्देश्य रहा है। *श्रीमद्भागवत* में इसे सौंदर्य और उदात्तता के बोध के साथ इस प्रकार निरूपित किया है—

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तम:श्लोकयशोऽनुगीयते॥ (*श्रीमद्भागवत,* 12.120.503)

(यह जो उत्तमचरित्र वाले महापुरुष का यशोगान किया जाता है, वहीं रम्य है, वही रुचिर है,
वही नित्य नया होता रहता है, वही मन का शाश्वत महोत्सव है और वही शोक के सागर को सोखने वाला है।)

अठारह महापुराणों का एक मुख्य विषय भक्ति है। भक्ति की इस गंगा के प्रवाह ने समाज में ऊँच-नीच की खाइयों को पाट दिया। *वराहपुराण* में धर्मव्याध का चरित है। व्याध या बहेलिया हो कर भी वह ऋषि बन जाता है।

पुराणों की शैली

> मार्कण्डेय पुष्पभद्रा नदी के किनारे सांध्योपासना कर रहे थे। तभी ज़ोर की आँधी आयी। प्रचण्ड शब्द करते हुए विकराल मेघ आकाश में घिर आये। बिजली की कड़क के साथ वे रुद्राक्ष जैसी मोटी पानी की धाराएँ गिराने लगे। फिर तो चारों सागर धरती को लीलने के लिए सब ओर से बढ़ते दिखने लगे। लहरें हवा के वेग में उछाल भर रही थीं, महा भयानक आवर्त गम्भीर घोष के साथ उमड़ रहे थे। ... मुनि ने देखा कि धरती तो जल से आप्लुत हो कर डूबी जा रही है, तो वे घबराए। उनके देखते-देखते तूफ़ान में नाचते महार्णव ने धरती, अंतरिक्ष, स्वर्ग और दिशाओं सहित त्रिलोकी को जलाविल कर दिया, महामुनि मार्कण्डेय जटाएँ बिखेरे जड़ और अंधे की तरह भूखे प्यासे उसमें घूमते चले जा रहे थे। घड़ियाल और महामत्स्य उन पर वार करने को बढ़े आ रहे थे, अपार अंधकार में भटकते हुए वे न दिशा बूझ पा रहे थे, न धरती या आकाश कहाँ गये यह जान पा रहे थे। वे थक कर चूर हो चुके थे, महावर्त में फँसते कभी तरंगों की चपेट में आते, कभी सागर के जीव उन्हें निगल लेते, वे कभी शोक का अनुभव करते, कभी मोह का, कभी सुख का, कभी दु:ख का, कभी भय का। कभी वे मृत्यु को पा जाते, कभी रोगों से ग्रसित हो जाते। ऐसे करते-करते विष्णु की माया में आवृत आत्मा वाले उनके सैकड़ों हज़ारों करोड़ वर्ष बीत गये। घूमते-घामते वे एक बार एक टीले पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक छोटा सा बरगद का पेड़ देखा, जो फलों और पत्तों से सुशोभित था। उसकी उत्तर की शाखा पर उन्होंने एक बच्चे को देखा, जो पत्ते के सम्पुट पर सोया हुआ था। वह अपनी आभा से अँधेरे को लील रहा था। वह नीलम मणि की तरह श्याम था, उसका मुखकमल सौंदर्य से मण्डित था। उसकी ग्रीवा शंख जैसी थी, वक्ष:स्थल विशाल था, नासिका और भौंहें सुंदर थीं। ... वह अपनी सुंदर अंगुलियों वाले हाथों से एक चरणकमल को उठा कर मुख में रख कर (पाँव के अँगूठे) को पी रहा था। मार्कण्डेय उसे देख कर चकित हो गये। उनकी सारी थकान मिट गयी, हृदय प्रफुल्लित हो उठा, आँखों के कमल खिल गये। वे रोमांचित हुए, अद्‌भुत भाव में भर कर उस बालक से कुछ पूछने के लिए आगे बढ़े ही थे कि उस शिशु की साँस से वे मच्छर की तरह उसके भीतर समा गये। उसके भीतर उन्होंने वही सब देखा जिसे देख कर वे अभी बहुत मोह में भर गये थे— आकाश, दिशाएँ, अंतरिक्ष, ग्रह-नक्षत्र, पहाड़, सागर, द्वीप, देशदेशांतर, देवता और असुर, जंगल, नदियाँ, नगर, गाँव, चरागाह, वर्णों की वृत्तियाँ ... विविध युगों को परिकल्पित करने वाला काल, हिमालय, फूल बहाने वाली वह नदी और अपना स्वयं का आश्रम भी। यह सारा विश्व देखते हुए वे उसी शिशु की छोड़ी हुई साँस से बाहर आ गिरे। उस टीले पर उगे वटवृक्ष के पर्णपुट पर सोये बालक ने चितवन से उन्हें ताका, वह बालक उनकी आँखों में फिर हृदय में समा गया। वे फिर उसे गले लगाने के लिए बढ़े, तब वे साक्षात् भगवान् योगाधीश गुहावासी अंतर्धान हो गये, उनके साथ ही संसार को लीलने वाला वह जल का संप्लव एक क्षण में विलीन हो गया। ऋषि अपने आश्रम में पहले की तरह बैठे हुए थे।
>
> (*श्रीमद्भागवत,* 12.9.101-343)
>
> बहुत पहले रावण विजय के पश्चात् राम ने अमृत की वर्षा करवा कर युद्ध में मारे गये सारे वानरों को जीवित करवा दिया। इनमें विकट, वृजिल, जाल, वरलीन, सिंहल, जव और सुमात्र आदि दुष्ट वानर भी थे। हनुमान राम के साथ रहे और अन्य वानर सुग्रीव के साथ। शेष बचे इन वानरों ने रामचंद्र से कहा कि प्रभु, हमें भी वांछित प्रदान कीजिए। तब राम ने उन्हें रावण के द्वारा अप्सराओं से उत्पन्न की गयी कन्याएँ दीं, और कहा कि तुम लोगों के नाम से ही जालंधर ने जो द्वीप बनाए हैं उनमें तुम लोगों का राज्य होगा। आगे चल कर तुम लोग गोरंडों (गोरों या अंग्रेज़ों) के वंश में जन्म लोगे और इस इस देश पर राज करोगे॥ (*भविष्यपुराण,* भविष्यपर्व)

इन उद्धरणों से पुराणों की शैली का कुछ जायज़ा लिया जा सकता है। पहला प्रसंग *भागवत* के मार्कण्डेय वृत्तांत के एक अंश का संक्षिप्त रूपांतर है। काल की एकरेखीयता के स्थान पर उसकी चक्राकार गतियों व दिक्‌काल की सापेक्षता को पुराणकार ने मार्कण्डेय के दृष्टांत से समझाया है। *भागवत* में अन्यत्र ब्रह्माण्ड, दिक् (स्पेस) तथा काल के प्रत्ययों को दार्शनिक चेतना के साथ प्रस्तुत

किया गया है, अत: इस तरह के आख्यानों को उन प्रत्ययों का प्रतीकात्मक उपस्थापन माना जाना चाहिए। अंग्रेज़ों को राम की सेना के दुष्ट बंदरों का अवतार बताने में *भविष्यपुराण* की अपनी एक इतिहास दृष्टि है।

पुराण अतीत को वर्तमान से जोड़ते हुए भविष्य पर दृष्टिपात करते हैं। काल के आवर्तन-विवर्तन, चक्राकार तथा सर्पिल गतियों को बताने के लिए पुराणों ने एक विशेष शैली अपनाई, जिसमें इतिहास (*रामायण* और *महाभारत*) के पात्रों को अपने समय में पुनर्जन्म दिखाया जाता है। शाप और वरदान के अभिप्रायों के द्वारा भी इतिहास के पात्रों का वर्तमान में अवतरण दिखाया जाता है। एक दूसरी शैली पुराणों ने भविष्यकथन की अपनायी। इस शैली को अपनाने से पुराणों के प्रणेता तो व्यास बने रहे, पर उनके अनुयायी सूत हर पुराणों में अपने वर्तमान को उनके मुख से भविष्यकथन द्वारा चित्रित करते रहे। व्यास सर्वज्ञ हैं, इसलिए वे आने वाली घटनाओं को सही-सही बताते जाते हैं। सभी प्रमुख पुराणों में मौर्यवंश तथा उसके बाद के राजाओं का हाल भविष्यकाल की क्रियाओं के द्वारा बताया गया है, कहीं कहीं इनमें सहज प्रवाहवश भूतकाल की क्रियाएँ भी आती गयी हैं।

पुराणों के द्वारा भविष्यकथन की शैली में वर्तमान के आकलन व भविष्य पर दृष्टि रखने की यह शैली जनसमाज में कदाचित् बड़ी लोकप्रिय हुई होगी (श्रीरामचंद्र कह गये सिया से, ऐसा कलजुग आएगा— जैसे फ़िल्मी गानों में इसकी झलक देखी जा सकती है), इसलिए इस शैली को ले कर एक पूरा पुराण— *भविष्यपुराण* लिखा गया।

विशिष्ट पुराण

पुराण-साहित्य में दो पुराण ऐसे हैं, जिनकी अठारह महापुराणों में गिनती नहीं होती, यहाँ तक कि प्राय: उपपुराणों में भी उन्हें शामिल नहीं किया जाता। अपनी प्राचीनता और विषयवस्तु की अद्वितीयता के कारण उनका असाधारण महत्त्व है। ये पुराण हैं— *हरिवंश* तथा *विष्णुधर्मोत्तर*।

हरिवंशपुराण

पुराणों में सर्वप्राचीन होते हुए भी यह पुराण अठारह पुराणों में परिगणित हुआ है। कहीं-कहीं इसे उपपुराणों में गिन लिया गया है। यह वस्तुत: *महाभारत* का परिशिष्ट या खिलपर्व कहा जाता है। इसका विषय मुख्यत: श्रीकृष्ण का चरित है। कृष्ण की बाललीलाओं का अत्यंत सरस वर्णन इसमें किया गया है। धरती के प्रति लगाव की अभिव्यक्ति इस पुराण ने इस तरह की है—

सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुंधरा।
चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठायोनिरेव च।
सर्वकामदुधा दोग्ध्री सर्वशस्यप्ररोहणी। (*ह.वं.पु.*, हरिवंशपर्व, 6.43-44)

(यह वही धरती है, जो सबका पालन करने वाली है, विधान करने वाली है और पावन है।
यह चराचर विश्व की प्रतिष्ठायोनि है। यह सारी कामनाओं को पूरा करने वाली
कामधेनु है तथा सारी फ़सलों को उगाने वाली है।)

हरिवंशपुराण में बलराम के द्वारा यमुना के कर्षण का वृत्तांत बहुत रोमांचक रूप में वर्णित है। बलराम ने यमुना से कहा कि हे महानदी, मैं तुम्हारे जल में गोता लगा कर स्नान करना चाहता हूँ। यमुना ने उनकी बात न सुनी। वह उनका उल्लंघन कर के अलग बहती गयी। तब बलराम ने हल उठा कर यमुना को खींचा।

स हलेनानताग्रेण कूले गृह्य महानदीम्।
चकर्ष यमुनां रामो व्युत्थितां वनितामिव॥
सा विह्वलजलस्रोता ह्रदप्रस्थितसञ्चया।
व्यावर्तत नदी भीता हलमार्गानुसारिणी॥
लाङ्गलादिष्टमार्गा सा वेगेन वक्रगामिनी।

सङ्कर्षणभयत्रस्ता योषेवाकुलतां गता॥
पुलिनश्रोणिबिम्बोष्ठी मृदितैस्तोयताडितैः।
फेनमेखलसूत्रैश्च वेगगाम्बुदगामिनी॥
तरङ्गविषमापीडा चक्रवाकोन्मुखस्तनी।
वेगगम्भीरवक्त्राङ्गी त्रस्तमीनविभूषणा॥
सितहंसेक्षणापाङ्गी काशक्षौमोच्छ्रिताम्बरा।
तीरजोद्धूतकेशान्ता जलस्खलितगामिनी॥
लाङ्गलोल्लिखितापाङ्गी क्षुभिता सागरंगमा।
मत्तेव कुटिला नारी राजमार्गेण गच्छती॥
कृष्यते सा स्म वेगेन स्रोतःस्खलितगामिनी।
उन्मार्गा नीतमार्गा सा येन वृन्दावनं वनम्॥

(तब बलराम ने अपने हल की नोक नीचे झुका कर उस नदी को किनारे पर पकड़ कर इस तरह खींचा जैसे किसी स्त्री को पकड़ कर खींच रहे हों। यमुना के जल की धार गड़बड़ा गयी, उसके जल के सोतों के संचय हिल गये, घबराई हुई वह नदी हल की राह के पीछे-पीछे चलने लगी। संकर्षण या बलराम के भय से त्रस्त एक स्त्री की तरह आकुल हो गयी, पुलिन रूपी श्रोणियों (नितंबों) वाली, बिम्बफल के जैसे अधर और ओष्ठ वाली, मथे और पीटे गये पानी वाली, फेन की करधनी वाली, वेग से चलते मेघों के समान गति वाली, तरंगों के विषम जूड़े वाली, चकवों के खुले स्तनों वाली, वेग के कारण गम्भीर मुख और काया वाली, डरी हुई मछलियों के आभूषण वाली, श्वेत हंसों की चितवन वाली, कास के फूलों के ढुलकते रेशमी वस्त्र वाली, तट पर उगे पेड़ों के हिलते केश वाली, चकराते हुए लड़खड़ाने वाली, हल की नोक से कुरेदे जाती आँखों की कोरों वाली, क्षुब्ध हुई वह सागरगामिनी मतवाली कुटिल नारी की तरह राजमार्ग पर चल रही थी, वह तेज़ी से खिंची चली जा रही थी, बहाव में लड़खड़ा रही थी, उन्मार्गमागिमी वह उस रास्ते पर ला दी गयी थी, जिधर वृंदावन का वन था।)

इस पुराण में सबसे विस्तृत प्रसंग बाणासुर के साथ श्रीकृष्ण के संग्राम का है। विष्णुपर्व के 106 से 113 (आठ अध्यायों में विस्तारित) यह पूरा प्रसंग अपने आप में आठ सर्गों के एक महाकाव्य जैसा है। विश्वविजयी बाणासुर तपस्या कर के शंकर से अपनी टक्कर के वीर के साथ उसे युद्ध का अवसर देने का वरदान माँगता है। इस कथा के साथ कृष्ण के नाती अनिरुद्ध का बाणासुरपुत्री उषा के साथ प्रेम का प्रसंग जुड़ा हुआ है। यह प्रसंग हमारे साहित्य में विलक्षण ही है। उषा स्वप्न में अपने आप को एक अत्यंत सुंदर युवक के द्वारा प्रधर्षित या सम्भोग की जाती हुई देखती है, जागने पर कौमार्य के भंग को ले कर वह पापबोध से ग्रस्त हो कर रोने-धोने लगती है। उसकी सखी चित्रलेखा उसे तरह-तरह से समझाती है। बहुत साहस और बारीकी से पुराण के रचनाकार ने स्त्री मनोविज्ञान की परतें यहाँ खोल दी हैं। फिर तो उषा के शील की रक्षा के लिए उस युवक को ढूँढ़ कर लाना आवश्यक हो जाता है, जिसने स्वप्न में उससे रमण का दुस्साहस किया। तीनों लोकों में चित्रलेखा की उस युवक की खोज का वृत्तांत भी ऐसा ही अनोखा है। अनिरुद्ध के द्वारका से अपहरण के बाद बाणासुर के साथ श्रीकृष्ण के भीषण संग्राम का रोमांचक वर्णन है। इसमें महामारी भी युद्ध में एक योद्धा के रूप में अवतरित होती है और श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश कर जाती है। कृष्ण प्रतिज्वर से उसे अपने भीतर ही समाप्त करने लगते हैं, तब अशरीरी वाणी यह कह कर उन्हें ऐसा करने से रोकती है कि संसार में तबाही मचाने के लिए एक ही महामारी पर्याप्त है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण

विष्णुधर्मोत्तरपुराण एक विश्व-कोशात्मक बृहत्काय ग्रंथ है। पुराण अपने समय के ज्ञान-विज्ञान की परम्परा के सम्पूर्ण दस्तावेज़ हैं। *विष्णुधर्मोत्तरपुराण* पुराणों की रचना के पीछे निहित इस दस्तावेज़ीकरण के इस ध्येय को अच्छी तरह चरितार्थ करता है। इसका तृतीय खण्ड भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* के पश्चात् नाट्यकला, रंगमंच, वास्तु, चित्र, नृत्त, मूर्त्ति आदि कलाओं का सबसे प्राचीन और सबसे अधिक प्रामाणिक तथा विस्तृत ग्रंथ कहा जा सकता है।

विष्णुधर्मोत्तर के पहले खण्ड में 269 अध्याय हैं तथा सृष्टि, भूगोल, ज्योतिष, राजाओं की वंशावली आदि पुराणों में प्रचलित विषयों का निरूपण है। दूसरे खण्ड में 183 अध्यायों में धर्म तथा

राजनीति से सम्बद्ध विषय अधिक हैं। तृतीयखण्ड में वेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण में 355 तथा डॉ. प्रियबाला शाह द्वारा सम्पादित संस्करण में 118 अध्याय हैं। इस खण्ड में संस्कृत तथा प्राकृत व्याकरण, कोश, छंद, काव्यशास्त्र, नृत्त, गीत, चित्र तथा नाट्य पर आधिकारिक शास्त्रीय निरूपण है।

कहीं-कहीं इस पुराण को *विष्णुमहापुराण* का परिशिष्ट भी माना गया है, पर अलबरूनी ने *नारदीयपुराण* तथा अन्य प्राचीन स्रोतों में इसे एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में उल्लिखित या उद्धृत किया है ।[12]

इस पुराण का रचनाकाल तीसरी से पाँचवीं शताब्दी के बीच माना जा सकता है।[13]

तृतीय खण्ड के प्रथम छह अध्यायों में शब्द निरूपण, छंदोविधि, वाक्यपरीक्षा तथा तंत्रयुक्ति आदि महत्त्वपूर्ण विषय हैं। सातवें में प्राकृत भाषा तथा आठवें से तेरहवें तक कोश और व्याकरण का निरूपण है, चौदहवें में अलंकार, पंद्रहवें में महाकाव्य आदि, सोलहवें में प्रहेलिका तथा अठारहवें और उन्नीसवें में गीत तथा आतोद्य वर्णित हैं। बीसवें से चौंतीसवें अध्यायों में नृत्तसूत्र कहा गया है। नृत्तसूत्र में ही सामान्याभिनय, आंगिक अभिनय, रस, भाव आदि विषयों का विस्तार से निरूपण है। पैंतीसवें अध्याय तक का अंश प्रतिमा लक्षण है। इसके आगे प्रासाद लक्षण में वास्तुशास्त्र का विषय लिया गया है।

अठारह पुराणों का परिचय

(1) *मत्स्यपुराण*— इस पुराण में लगभग 14,000 श्लोक हैं। *देवीभागवत पुराण* ने इसकी श्लोक संख्या 14,000 ही बताई है। इस पुराण का महत्त्व आंध्र वंशीय राजाओं की वंशावली के कारण है। यह दक्षिण भारत से विशेष सम्बद्ध प्रतीत होता है तथा दक्षिण के वास्तु, मूर्ति व स्थापत्य का प्रामाणिक विवरण इसमें दिया गया है। विभिन्न मन्वंतरों तथा सृष्टि के उद्‌भव की कथाओं के साथ निम्नलिखित प्राचीन आख्यान भी इसमें हैं— मनुमत्स्यकथा, ययाति, दक्ष आदि प्रजापतियों के द्वारा सृष्टि, मरुतों की उत्पत्ति, चंद्रमा तथा बुध का आख्यान, मनु और श्रद्धा की कथा, त्रिपुरासुर और तारक के वध की कथाएँ आदि। पहले अध्याय में मनु और मत्स्य की कथा में यहाँ मत्स्य विष्णु के अवतार के रूप में वर्णित है, तथा विष्णु और केशव (कृष्ण) यहाँ आ कर अभिन्न हो गये हैं। इस पुराण में ययाति का चरित दस अध्यायों में बड़े विस्तार से वर्णित है। ये दस अध्याय अपने आप में एक महाकाव्य बन गये हैं। इसी तरह वामनावतार कथा भी इस पुराण में नौ अध्यायों में बहुत रोचक रूप में बताई गयी है। विभिन्न व्रतों और उपवासों तथा तीर्थों और द्वीपों का विवरण भी इसमें दिया गया है।

(2) *मार्कण्डेयपुराण*— इस पुराण में 134 अध्याय हैं। मत्स्य, नारदीय, भागवत, *देवीभागवत* तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणों के अनुसार इस पुराण में 9000 श्लोक होने चाहिए, पर उपलब्ध प्रतियों में 6900 श्लोक लगभग मिलते हैं। इस पुराण का देवीमाहात्म्य विशेष महत्त्वपूर्ण है, जिसमें आद्या शक्ति के रूप में दुर्गा की सुंदर स्तुति है। चौथे अध्याय में विष्णु के चतुर्व्यूहावतार, छठे में बलराम की ब्रह्महत्या, सातवें में द्रौपदी के अविवाहित पुत्रों के वध का हेतु, बारहवें में नरनारायण के प्रसंग हैं। सती मदालसा के आख्यान पर अनेक अध्याय हैं। इक्ष्वाकुचरित, तुलसी का आख्यान, रामोपाख्यान, पुरूरवा, नहुष की कथाएँ, सूर्य और चंद्रवंशीय राजाओं के विविध चरित इसमें हैं।

(3) *भविष्यपुराण*— इस पुराण में लगभग 14,500 श्लोक हैं। इस पुराण में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य और प्रतिसर्ग नाम से पाँच पर्व हैं। विभिन्न व्रतों से सम्बद्ध कथाएँ तथा सूर्य आदि देवों की पूजा की पद्धति भी इसमें बतलाई गयी है। अंतिम प्रतिसर्ग पर्व में उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रक्षिप्त अंश जुड़ते रहे हैं। महारानी विक्टोरिया को यहाँ विकटावती कहा गया है। इस पुराण में भारतवर्ष का इतिहास

---

[12] विधपुराण बड़ौदा (सं.), भूमिका : 22.
[13] वही : 24-25.

भविष्यवाणियों द्वारा निरूपित है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास का यह एक अच्छा स्रोत है। इसमें वर्णित पृथ्वीराज, मोहम्मद गोरी तथा आल्हा का वृत्तांत *पृथ्वीराजरासो, परमालरारासो* आदि काव्यों की अपेक्षा ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्रामाणिक है। आल्हा के लिए आह्लाद, लाखन के लिए लक्षण आदि संस्कृत नाम इसमें प्रयुक्त हैं। सिरसा को शिरीषपुर तथा महौबा को महावती कहा गया है। इसके प्रतिसर्ग पर्व में बाइबिल में वर्णित नोह की कथा, यीशु मसीह का चरित्र, राजा विक्रम की कथा, बाबर का भारत आगमन, भट्टोजी दीक्षित, रामानुज, चैतन्य, मध्वाचार्य, सूर, कबीर, तुलसी, मीरा आदि संतों का जीवन, अकबर का शासनकाल तथा उसके आगे अंग्रेज़ों का भारत आगमन और महारानी विक्टोरिया का शासनकाल वर्णित है।

भविष्यपुराण में आह्लाद (आल्हा) की कथा की पृष्ठभूमि शिव के कथनों में भविष्यकाल की क्रियाओं द्वारा बताई गयी है। शिव क्रुद्ध हो कर *महाभारत* के पात्रों को शाप दे देते हैं, फिर वे कृष्ण को बताते हैं कि मेरा शाप अन्यथा हो नहीं सकता, तो कलियुग में युधिष्ठिर शिरीष (सिरसा) नगर के राजा और वत्सराज (आल्हाखण्ड में बच्छराज) के पुत्र बलखानि (आल्हखण्ड में मलखान) बनेंगे। भीम ने दुर्वचन कहे हैं, तो वह म्लेच्छ योनि में गिर कर वनरसा का राजा वीरण बनेगा। अर्जुन परिमल (परमाल) का पुत्र ब्रह्मानंद होगा। नकुल कान्यकुब्ज (कन्नौज) में जन्म लेगा, वह रत्नभानु का पुत्र लक्ष्मण या लक्षण (लाखन) बनेगा। धृतराष्ट्र अजमेर नगर में पृथ्वीराज के रूप में जन्म लेगा। द्रौपदी वेला के नाम से उसकी बेटी बनेगी। तब कृष्ण हँस कर कहते हैं कि जहाँ पाण्डव जन्म लेंगे, मैं वहाँ अपने अंश से अवतार ले कर उनकी रक्षा करूँगा। महावती (महौबा) नगरी में देशराज का बेटा मेरे अंश से ही जन्म लेगा, आह्लाद (आल्हा) भी मेरा अवतार होगा। इसके आगे पृथ्वीराज और जयचंद का वृत्तांत है, जिसमें मुहम्मद गोरी से युद्ध के प्रसंग हैं। जयचंद इसमें विश्वासघाती नहीं है, मुहम्मद गोरी से युद्ध वही करता है और अपने लोगों द्वारा विश्वासघात के कारण मारा जाता है। इस पुराण का यह अंश जिस समय लिखा जा रहा था, उसी के आसपास मैथिली कवि विद्यापति संस्कृत में अपनी अनूठी कहानियों का संग्रह *पुरुषपरीक्षा* लिख रहे थे। *पुरुषपरीक्षा* की एक कहानी में भी जयचंद के मुहम्मद गोरी से युद्ध और अपने मंत्री के विश्वासघात के कारण हारने का वृत्तांत है। जगनिक के *आल्हखण्ड* तथा *पृथ्वीराजरासो* के साथ *भविष्यपुराण* के इन प्रसंगों की तुलना करके उस समय के इतिहास का पुनरवलोकन किया जाना चाहिए।

बाबर के भारत-आगमन के साथ पुराणकार ने मुगलकालिक इतिहास का निरूपण उठाया है। इस प्रसंग में अकबर का शासनकाल विस्तार से वर्णित है। तैमूरलंग, बाबर, होमायुष (हुमायूँ), शेषशाक (शेरशाह) आदि के वृत्तांतों में इस पुराण के द्वारा इतिहास की वे परतें उघड़ती हैं, जो भारतीय लोकमानस में संचित रही होंगी। म्लेच्छराज बाबर द्वारा प्रयाग के देवताओं को भ्रष्ट कर दिये जाने पर वहाँ के ब्रह्मचारी मुकुंद के आग में जल कर प्राण दे देने का वृत्तांत *भविष्यपुराण* में इसलिए जोड़ा गया है कि अगली पीढ़ी में ये ही मुकुंद ब्रह्मचारी अकबर के रूप में अवतार लेंगे। अकबर के जन्म को ले कर पुराणकार कहता है— होमायुष काश्मीर में था, तब उसके पुत्र ने जन्म लिया। उसके जन्म लेते ही अशरीरिणी वाणी (आकाशवाणी) हुई— अकस्मात् वर (अच्छे) पुत्र का जन्म हुआ है ... अत: हे होमायुष्, तेरा पुत्र अकबर कहलाएगा। इसके आगे अकबर को श्रीधर, श्रीपति, शम्भु आदि आदि विशेषणों व संज्ञाओं से विभूषित कर के मुकुंद ब्रह्मचारी का ही अवतार बता दिया गया है। वीरबल को मध्वाचार्य के कुल में जन्मे देवापि का अवतार कहा गया है। महामद (महमूद शाह) के शासनकाल में नादर (नादिरशाह) नामक दैत्य आता है।

भविष्यपुराण की रचना करने वाले पुराणकार की स्मृति में मुगल काल की स्मृतियाँ अधिक तरोताज़ा हैं। पर उसे बादशाहों के जीवन व राजनीतिक घटनाचक्र की अपेक्षा संतों, भक्तकवियों तथा बदलते सांस्कृतिक परिदृश्य में अधिक रुचि है। वह बार-बार संस्कृत की परम्पराएँ किस तरह लोकभाषा

में संत कवियों के द्वारा उतारी जा रही हैं— इसकी चर्चा करता है। इन संतों ने लोकभाषा में हमारी ज्ञाननिधि और आख्यानों को सरल बना कर प्रस्तुत किया— इस बात को पुराणकार रेखांकित करता चलता है। दक्षिण के संत बिल्वमंगल का मूल नाम उसने सूर बताया है। वह सूरदास का मूल नाम श्रीपति बताता है, तथा उन्हें मध्वाचार्य का मतानुयायी मानता है। केशवदास का *कविप्रिया* जैसे कठिन ग्रंथ की रचना कर के प्रेत बन जाना और *रामचंद्रिका* लिखने के बाद उनके स्वर्ग-प्राप्ति की कथा हिंदी के साहित्य से पुराणों की अपने ढंग से अंत:क्रिया का साक्ष्य है।

धार्मिक तथा सांस्कृतिक इतिहास के प्रतिपादन की दृष्टि से भी *भविष्यपुराण* बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें वराहमिहिर, धन्वंतरि, सुश्रुत, जयदेव आदि चिंतकों व कवियों, भट्टोजी दीक्षित जैसे वैयाकरणों, शङ्कराचार्य, गुरु गोरखनाथ, रामानंद, निम्बार्क, मध्व, श्रीधर, विष्णुस्वामी, वाणीभूषण, रामानुज, चैतन्य महाप्रभु आदि महापुरुषों तथा उनके द्वारा प्रवर्तित धार्मिक सम्प्रदायों का सूरदास, कबीर आदि संत कवियों के भी चरित निरूपित हैं। मुग़लकाल के इतिहास का प्रतिपादन *भविष्यपुराण* की दुर्लभ विशेषता है।

सेवाजी (शिवाजी) का राज्य तथा मुगलवंश का ह्रास बताते हुए पुराणकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत में घुसपैठ का वर्णन करता है। कम्पनी के द्वारा किस प्रकार भारत में अपना जाल फैलाया गया इसका भी संक्षिप्त निरूपण यहाँ किया गया है। कलिकाता (कलकत्ता) नगरी का इस प्रसंग में वर्णन है।

(4) *भागवतपुराण*— इस पुराण में बारह स्कंध, 335 अध्याय तथा 18,000 श्लोक हैं।

तेरहवीं शती के प्रख्यात वैयाकरण बोपदेव ने भागवत को लेकर तीन ग्रंथों का निर्माण किया— (1) *हरिलीलामृत* या *भागवतानुक्रमणी,* और (2) *मुक्ताफल*— इस पुराण के सरस श्लोकों का संग्रह तथा (3) *परमहंसप्रिया*— भागवत की टीका। बोपदेव को *भागवत* से इतना लगाव था कि एक परम्परा में भागवत का प्रणेता ही उन्हें मान लिया गया है। स्वामी दयानंद, पण्डित नीलकंठ शास्त्री आदि ने बोपदेव के भागवतकर्तृत्व को स्वीकार किया है।[14] यह मत अस्वीकार्य है, क्योंकि आदि शंकराचार्य के परमगुरु गौडपाद ने अपने पंचीकरणव्याख्यान तथा *उत्तरगीता* की टीका में *भागवतपुराण* के उल्लेख के साथ इसके पद्यांश उद्धृत किये हैं।

पहले स्कंध के 19 अध्यायों में *महाभारत* युद्ध के पश्चात् हुई घटनाओं का वर्णन मुख्य है। दूसरे

---

[14] सम्भवत: अपने गुजराती उच्चारण के कारण दयानंद बोपदेव को बोबदेव लिखते हैं. 'और यह भागवत बोबदेव का बनाया है जिसके भाई जयदेव ने *गीतगोविंद* बनाया है. देखो! उसने ये श्लोक अपने बनाए *हिमाद्रि* नामक ग्रंथ में लिखे हैं कि श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है. उस लेख के तीन पत्र हमारे पास थे. उन में से एक पत्र खो गया है. उस पत्र में श्लोकों का जो आशय था उस आशय के हमने दो श्लोक बना के नीचे लिखे हैं. जिस को देखना हो वह हिमाद्रि ग्रंथ में देख लें—

'हिमाद्रे सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासत: ॥1॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोऽन्वितम्॥ 2॥

'इसी प्रकार के नष्टपत्र में श्लोक थे. अर्थात् राजा के सचिव हिमाद्रि ने बोबदेव पण्डित से कहा कि मुझको तुम्हारे बनाए श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण सुनने का अवकाश नहीं है इसलिए तुम संक्षेप में श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ जिसको देख के मैं श्रीमद्भागवत की कथा को संक्षेप में जान लूँ. सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस बोबदेव ने बनाया. उसमें से उस नष्टपत्र में दस 10 श्लोक खो गये हैं ग्यारहवें श्लोक से लिखते हैं. ये नीचे लिखे श्लोक सब बोबदेव के बनाए हैं.

'बोधयंतीति हि प्राहु: श्रीमद्भागवतं पुन:।
पञ्च प्रश्ना: शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥ 11॥
प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्य निर्वृति: कृतात्।
नारदस्यात्र हेतूक्ति: प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च।॥12॥
सुप्तघ्नं द्रोण्यभिभवस्तदस्त्रात् पाण्डवा वनम्।
भीष्मस्य स्व:पदप्राप्ति: कृष्णस्य द्वारिकागम: ॥13॥

स्कंध में 10 अध्यायों में ईश्वर का विराट् रूप, *ऋग्वेद* के पुरुषसूक्त की व्याख्या, शुक से परीक्षित के संवाद का आरम्भ आदि प्रसंग हैं। तीसरे स्कंध में 33 अध्याय हैं। ब्रह्मा का प्रादुर्भाव तथा कपिल के सांख्यदर्शन का प्रतिपादन आदि विषय हैं। चौथे स्कंध में 31 अध्यायों में दक्षयज्ञ का विध्वंस आदि, पाँचवें में 26 अध्यायों में प्रियव्रत, भरत, रहूगण, भुवनकोश, कालचक्र, नरकयातनाएँ आदि, छठे में 19 अध्यायों में अजामिलवृत्तांत, वृत्रासुरसंग्राम आदि सातवें में पंद्रह अध्यायों में हिरण्यकशिपु व त्रिपुरवध से सम्बद्ध कथाओं के साथ नारद द्वारा युधिष्ठिर को बताए गये स्त्रीधर्म वर्णाश्रमधर्म आदि, आठवें स्कंध में चौबीस अध्यायों में वामनावतार आदि, नवें स्कंध में चौबीस ही अध्यायों में सूर्यवंश, भगीरथ, रामराज्य, निमि, पुरूरवा, ययाति रंतिदेव, अजमीढ़, दिवोदास आदि की कथाएँ, दसवें में 90 अध्यायों में वसुदेव-देवकी-विवाह तथा कृष्णजन्म, कृष्ण की बाललीलाएँ आदि, ग्यारहवें स्कंध में 31 अध्यायों में प्रभास क्षेत्र में मौसलयुद्ध, कृष्ण के विविध उपदेश आदि तथा अंतिम बारहवें स्कंध में 13 अध्यायों में कलियुग तथा उसमें हुए राजाओं, परीक्षित को मोक्षप्राप्ति तथा मार्कण्डेय के मोह व मोहनिवारण आदि के प्रसंग हैं।

भागवत के पंचम स्कंध का गद्य अत्यंत प्रांजल और प्रौढ़ है तथा इस स्कंध में भारत देश की मनोहारी छवि का सरस चित्रण है। यह वैष्णव पुराण है। वैष्णव धर्म के अनुयायी इसे पाँचवाँ वेद ही मानते हैं। कविता और दर्शन का दुर्लभ मणिकांचनयोग इस पुराण में हुआ है। यह चिंतन, पाण्डित्य और काव्य की कसौटी माना गया है। कहा भी है— 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'— अर्थात् विद्वानों की परीक्षा भागवत में ही है। विष्णु के अवतारों का वर्णन करते हुए भागवतकार ने सांख्य के प्रवर्तक कपिल मुनि तथा गौतम बुद्ध को भी उनके अवतारों में निरूपित कर के धर्म के संबंध में समन्वय की दृष्टि का परिचय दिया है। पंचम स्कंध में ऋषभदेव और जड भरत का चरित्र अत्यंत प्रेरणास्पद है। भागवत के दसवें और ग्यारहवें स्कंध श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन के लिए प्रसिद्ध तथा अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं।

श्रीमद्भागवतकार ने वेदमहाब्धि का मंथन कर उसका नवनीत इस ग्रंथ में समाहित कर दिया है। दर्शन, अध्यात्म, आख्यान तथा प्रतीकतत्त्व *ऋग्वेद* से ले कर उन्हें रम्य रूप में प्रस्तुत किया है, जिसका एक उदाहरण पुराणों में वेदों के उपबृंहण के विवेचन में ऊपर दिया गया है।

विष्णु के अवतारों का वर्णन करते हुए भागवतकार ने सांख्य के प्रवर्तक कपिल मुनि तथा गौतम बुद्ध को भी उनके अवतारों में निरूपित कर के धर्म के संबंध में समन्वय की दृष्टि का परिचय दिया है। पंचम स्कंध में ऋषभदेव और जड भरत का चरित्र अत्यंत प्रेरणास्पद है। भागवत के दसवें और ग्यारहवें स्कंध श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन के लिए प्रसिद्ध तथा अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं।

श्रोतुं परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः।
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः ॥14॥
इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृप ॥15॥
इति वै राज्ञो दाढ्र्योक्तौ प्रोक्ता द्रौणिजयादय । इति प्रथमः स्कंधः ॥1॥
'इत्यादि बारह स्कंधों का सूचीपत्र इसी प्रकार बोबदेव पण्डित ने बनाकर हिमाद्रि सचिव को दिया. जो विस्तार देखना चाहे वह बोबदेव के बनाए हिमाद्रि ग्रंथ में देख लेवे. (*सत्यार्थप्रकाश,* एकादशसमुल्लास).

काव्यात्मक कल्पनाओं, अलंकारों के यथोचित विन्यास तथा व्यंजना व वक्रता के प्रयोगों की विच्छित्ति भागवत में विलक्षण है। पर भागवतकार ने सारी काव्य सम्पदा को दिव्य व आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचा दिया है। आकाश के वर्णन में वे कहते हैं—

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम्॥ (10.20.43)

(शरद् में निर्मेघ आकाश विमल तारों के साथ ऐसा सुशोभित था, जैसे शब्दब्रह्म के अर्थ का दर्शन करने वाला सत्त्वयुक्त चित्त।)

भागवत में विपत्ति की मार झेलने वाले कृष्ण के भक्तों की तुलना ऐसे पर्वतों से की गयी है, जो वर्षा की बौछारों से मार खा-खा कर भी व्यथित नहीं होते

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः॥ (10.20.15)

इसी तरह अपरिपक्व योगी के कामार्त चित्त की तुलना सागर से की गयी है—

सरिद्भिः सङ्गतः सिंधुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान्।
अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग् यथा॥ (10.20.14)

तुलसीदास ने अपने *रामचरितमानस* के वर्षावर्णन में भागवत की इन पंक्तियों को अपनी भाषा में सहेज लिया है। *श्रीमद्भागवत* में दर्शन, भक्ति, धर्मतत्त्व का विवेचन, उत्कृष्ट काव्यात्मकता तथा लीलाओं का मार्मिक निरूपण हुआ है। इसके कतिपय अत्यंत भावोच्छ्वास मय प्रसंगों को गीता या गीत कहा जाता है। पिंगला का गीत, ब्राह्मणभिक्षु का गीत, वेणुगीत, भ्रमरगीत आदि ऐसे ही गीत है। भ्रमरगीत (अध्याय-47) में कृष्ण के प्रति उत्कट शृंगार व समर्पण का एकतान चित्त गोपियों के कथनों में अभिव्यक्त हुआ है। भ्रमर या भौंरे को कृष्ण का प्रतीक मान कर गोपियाँ उसकी निष्ठुरता के लिए जिस तरह उलाहना देती हैं, वह मानवीय राग की पराकाष्ठा है। भागवतकार से सृष्टि को कृष्ण के प्रेम से सराबोर कर दिया है। वेणुगीत में मुकुंद का गान सुन कर नदियाँ भाव-विभोर हो जाती हैं, ऊर्मियों की भुजाओं में कमल के उपहार भरकर कर उनके चरणों पर रख देती हैं। (10.21.25)

संसार का वर्णन अश्वत्थवृक्ष के प्रतीक के द्वारा महाभारतादि में किया जाता रहा है। भागवतकार ने इस प्रतीक को रूपक अलंकार का सौंदर्य देते हुए कहा है— 'यह पुराना संसारवृक्ष कर्म से बना हुआ है, पुण्य के फल इसमें लगते हैं। इसके दो बीज हैं, सौ जड़े हैं, तन नाल हैं, पाँच तने हैं, दो पक्षियों के घोसले इसमें हैं, पाँच प्रकार के रस इससे निकलते हैं, दर्शक इसकी शाखाएँ हैं, तीन इसके वल्कल हैं, दो फल हैं, यह सूर्य तक पहुँचा हुआ है, इसके एक फल को गाँव में रहने वाले गीध खाते हैं, दूसरे वन में रहने वाले।' (11.12.21-23)

दुःख में तपते जीवन के लिए कृष्ण की कथा अमृत का लेप बन जाती है, कानों में मंगल की धुन बन कर गूँजती है।

भागवत भारतीय पम्परपरा में भगवद्भक्ति का सर्वोत्तम ग्रंथ कहा जा सकता है। भक्त के आर्त भाव का जैसा गहन भावबोधसमन्वित वर्णन भागवतकार ने किया है, वह अनुपम है। भक्त की भावना को हमारे आसपास की दुनिया के उपमानों व बिंबों के द्वारा साकार किया गया है। जैसे

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(जैसे बिना पंखों के चूजे अपनी माँ को देखना चाहते हैं, जैसे भूख से आकुल बछड़े दूध के लिए अकुलाते हैं, जैसे विषादग्रस्त वियोगिनी प्रिया प्रवास पर गये अपने प्रिय को पाना चाहती है, हे अरविंदाक्ष! इसी तरह यह मन तुम्हें देखना चाहता है।)

तीसरे स्कंध के आठवें अध्याय में विष्णु के रूप का वर्णन तो विस्मयविमुग्ध करने वाला है। सौंदर्यबोध के साथ वैश्विकदृष्टि का ऐसा समागम हमारे साहित्य में कम ही मिलेगा। कई-कई रंगों की छटाएँ यहाँ बिखेरती हैं, अगणित ऊर्जस्वी कल्पनाएँ ईश्वर पर निछावर हो जाती हैं। विष्णु की मनोहारी

काया में त्रिलोकी समा जाती है। कदम्ब के किञ्जल्क की पिशंग छवि वाले वस्त्र, श्रीवत्समणि से जगमगाता वक्ष:स्थल, कौस्तुभमणि की झिलमिलाती आभाएँ, केयूरो में चमकते भुजदण्ड चारों और घुमड़ता सागर इन सब के बिंब अनोखा संसार रचते हैं।

रामानुज, मध्व, निम्बार्क, रामानंद आदि के वेदांतदर्शन हों या गौड़ीय भक्तिशास्त्र अथवा चैतन्यसम्प्रदाय— सहस्रों वर्षों से भागवत इन विविध परम्पराओं का आकर ग्रंथ बना हुआ है। उचित ही रूपगोस्वामी ने इसे अपने उज्ज्वलनीलमणि जैसे रसशास्त्र के प्रौढ़ ग्रंथ में बहुश: उद्धृत किया है। रासलीला के सौंदर्य का निदर्शन भागवत ने अनुपम रूप में कराया, तथा इस सौंदर्य को अलौकिक के आभामण्डल से भी मण्डित किया। फिर चेतावनी दी—

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वर: ।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम्॥ (3.26)
(अनीश्वर या सामान्य व्यक्ति मन में ऐसा करने का न सोचे। यदि वह ऐसा करेगा, तो अपनी मूढ़ता के कारण मारा जाएगा। शिव ने हलाहल का पान किया, सामान्य जन ऐसा नहीं कर सकते।)

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रित:।
भजते तादृशी: क्रीडा या: 'श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥
(भगवान् ने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए मानुष देह का आश्रय लिया। जो उनकी लीला सुन कर तत्पर या तन्मय हो जाता है, वह वैसी ही क्रीड़ा कर सकता है।)

भागवत भक्ति के उस महाप्रवाह का प्रतीक है, जिसने आर्यपथ के सारे बंधनों को झकझोर कर तोड़ दिया। घरबार की शृंखलाएँ उसके उद्दाम आवेग में टूट गयीं। यज्ञ के महिमामय मण्डप में नहीं, गाँवगिराँव में, चौपाल में, कुण्ड और निकुंज में ईश्वर का अवतरण हुआ।

देवीभागवत पुराण में इस पुराण पर विशद प्रशस्ति करते हुए पुराणकार सूत इसे सारे दु:खों का नाश करने वाला और पवित्र कहते हैं—

कृष्णद्वैपायनात्प्रोक्तं पुराणं च मया श्रुतम्।
श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदु:खौघनाशनम्॥
कामदं मोक्षदं चैव वेदार्थपरिबृंहितम्।
सर्वागमरसारामं मुमूक्षूणां सदा प्रियम्॥ (दे.भा. 1.3.33-34)

(5) *ब्रह्माण्डपुराण*— इस पुराण में लगभग 12,200 श्लोक हैं। *देवीभागवत* में इसकी श्लोक संख्या 12,100 बताई गयी है। *नारदपुराण* में इसकी विषयसूची 42 श्लोकों में दी गयी है। *ब्रह्माण्ड पुराण* अनेक स्तोत्रों, उपाख्यानों तथा देवी-देवताओं के माहात्म्य वर्णनों के कारण महत्त्वपूर्ण है। *अध्यात्म रामायण* इसी का एक अंश माना जाता है। रामोपासना का भी प्रतिपादन इस पुराण में है।

(6) *ब्रह्मवैवर्तपुराण*— इस पुराण में लगभग 18,000 श्लोक हैं। कृष्णभक्ति और कृष्णोपासना के विवेचन के कारण यह पुराण अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कृष्ण की आद्या शक्ति के रूप में राधा का निरूपण पुराणों में सर्वप्रथम इसी पुराण में मिलता है। इस पुराण में ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड तथा कृष्णखण्ड— ये चार खण्ड हैं। ब्रह्मखण्ड में सृष्टि के उद्भव और विकास का वर्णन है। प्रकृतिखण्ड में आद्याशक्ति का निरूपण है। पंद्रहवें से इक्कीसवें तक सात अध्यायों में वर्णित तुलसी का आख्यान स्त्री-विमर्श की एक महागाथा ही है। गणेशखण्ड में गणेश का श्रीकृष्ण के अवतार के रूप में किया गया है। गणेश की अनेक दुर्लभ कथाएँ भी यहाँ दी गयी हैं। कृष्ण खण्ड में कृष्ण की सभी लीलाएँ वर्णित हैं। ब्रह्मखण्ड के चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण की नासिका से सावित्री की उत्पत्ति बताई गयी है, छठे में श्रीकृष्ण ही महालक्ष्मी, महाकाली व महासरस्वती को विष्णु आदि के लिए दान देते हैं। प्रकृति खण्ड में राधासंबंधी अनेक कथाएँ हैं। एक कथा में राधा सुदामा को शाप दे देती हैं। श्रीकृष्णजन्म खण्ड में राधा और कृष्ण के संवाद तथा कृष्ण द्वारा राधा को सुनाई गयी अनेक कथाएँ हैं। उत्तरार्ध में राधा का विरह तथा राधा और कृष्ण की विहार के अनेक प्रसंग हैं।

(7) *ब्रह्मपुराण*— इस पुराण का आदिपुराण नाम भी मिलता है, जिससे इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। अनेक अन्य प्राचीन पुराणों में भी इसका उल्लेख मिलता है। उनमें से *विष्णुपुराण, शिवपुराण,*

श्रीमद्भागवत नारदीयमहापुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा *मार्कण्डेयपुराण* के अनुसार इस पुराण में दस हज़ार श्लोक हैं। कुछ पुराणों में इसकी श्लोक संख्या तेरह हज़ार कही गयी है। प्रकाशित संस्करण में 13,787 श्लोक मिलते हैं। *देवीभागवत* आदि में इस पुराण की श्लोक संख्या दस हज़ार ही बताई गयी है।

ब्रह्मपुराण में सूर्य वंश का वर्णन अध्याय 7-8 में किया गया है। आठवें अध्याय में ही हरिश्चंद्र और राजा भगीरथ आदि की कथाएँ हैं। नवें में सोम और बुध के चरित तथा दसवें में पुरूरवा का चरित और उसके वंश का वर्णन है। आगे के अध्यायों में ययाति और उसका वंश, कार्तवीर्य अर्जुन, दक्षयज्ञ आदि की कथाएँ वर्णन महत्त्व की हैं। अठारहवें में सप्तद्वीपों का भूगोल तथा भारतवर्ष का वर्णन है। इस पुराण में अवंतिमाहात्म्य तथा उत्कल (आधुनिक उड़ीसा) के तीर्थस्थानों तथा इतिहास का विवरण प्रामाणिक है। तैतालीसवें अध्याय से उनसठवें अध्याय तक उड़ीसा के तीर्थ और उससे जुड़ी कथाएँ हैं, जिनमें राजा इंद्रद्युम्न का पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी) में बलभद्र, सुभद्रा व कृष्ण की प्रतिमाओं का लाने का प्रसंग विस्तार से बताया गया है। गुंडीचा यात्रा या जगन्नाथ यात्रा का वर्णन भी विस्तृत है। 195 से 245वें अध्याय तक का अधिकांश भाग भारत के विभिन्न तीर्थों के वर्णनों से भरा हुआ है। दसों अवतारों तथा उनसे जुड़ी कथाएँ भी इस पुराण में हैं। कृष्णावतार के प्रसंग में रुक्मिणी और कृष्ण का विवाह, प्रद्युम्न और शंबर का युद्ध, उषा और अनिरुद्ध का प्रेम-प्रसंग आदि महत्त्व के हैं। शिव और पार्वती के विवाह की कथा इस पुराण के अध्याय चौंतीस से सैंतीस तक अत्यंत सरस काव्यात्मक विन्यास के साथ प्रस्तुत की गयी है, जो कालिदास के कुमारसम्भव से साम्य रखती है। इसके अध्याय 180 से 212 तक कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन भी बड़ा मनोहर है। विष्णु के अवतारों व विष्णुपूजाविधान के साथ ही इस पुराण में शिवोपासना तथा सूर्योपासना दोनों का वर्णन है। इसी का एक परिशिष्ट सौर पुराण कहा गया है।

(8) *वामनपुराण*— इस पुराण में 95 अध्याय तथा 10,000 श्लोक हैं। *देवीभागवत* में भी इसकी श्लोक संख्या दस हज़ार बताई गयी है। तेईसवें से इकतीसवें अध्याय तक तथा अध्याय 88 से 94 तक इसमें वामन अवतार का वर्णन है। शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन (अध्याय 51-53) और लिंग पूजा का प्रतिपादन भी है। विविध आख्यानों या कथाओं में इसमें दक्षयज्ञ (अध्याय 2-5), नर-नारायण, उर्वशी की उत्पत्ति व प्रह्लाद से नारायण का युद्ध (अध्याय 6-8), अंधकासुर और सुकेशि के प्रसंग (अध्याय 9-17 तथा अध्याय 69-70), महिषासुरप्रसंग (अध्याय 19-21), शिव का यज्ञ (अध्याय 54) तथा जाबालि, गालव, दण्डक, देवासुरसंग्राम के अनेक प्रसंग इसमें हैं। तीर्थों में कुरुक्षेत्र के इतिहास व भूगोल पर विशद जानकारी है।

(9) *वराहपुराण*— इस पुराण में वराह अवतार का निरूपण है। इसमें कहा गया है कि पृथ्वी का उद्धार करने के पश्चात् भगवान् वराह ने इस पुराण का उपदेश दिया। पुराणों में इसकी श्लोक संख्या 24,000 श्लोक कही गयी है, पर वर्तमान में इसमें 218 अध्यायों में लगभग 11,000 श्लोक ही मिलते हैं। वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस से प्रकाशित संस्करण में सूचना दी गयी है कि इस पुराण का खण्डित अंश ही मिला है, यदि किन्हीं महानुभावों को पास पूरी प्रति हो, तो दें, जिससे यह पूर्ण रूप से प्रकाशित हो सके। इसमें शिव तथा दुर्गा से सम्बद्ध आख्यान हैं। अन्य उपाख्यानों में नचिकेतोपाख्यान तथा श्राद्ध और प्रायश्चित्त के विधानों का भी निरूपण इस पुराण में किया गया है। धर्मव्याध का चरित इस पुराण के आठवें अध्याय में है। नवें अध्याय में वैष्णव परम्परा के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति की वर्णन है। इस पुराण के दसवें और ग्यारहवें अध्यायों में वर्णित दुर्जय राजा का चरित भी दुराधर्ष शौर्य की कथा है। *देवीभागवत* ने इस पुराण को परम अद्भुत कहा है।[15]

---

[15] *देवीभागवत,* 1.3.8.

(10) *विष्णुपुराण*— इस पुराण में छह खण्ड (अंश), 126 अध्याय तथा *देवीभागवत* कुछ पुराणों के अनुसार 23,000 तो अन्य पुराणों के अनुसार 24,000 श्लोक हैं। किंतु प्रकाशित संस्करणों में लगभग 6000 श्लोक ही प्राप्त होते हैं, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इसका एक बड़ा भाग लुप्त हो गया है। पुराणों में प्राचीनता और धर्म तथा दर्शन के निरूपण की प्रामाणिकता के कारण *विष्णुपुराण* का निर्विवाद महत्त्व है। 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' की कसौटी पर यह पुराण सर्वाधिक खरा उतरता है। इसमें विष्णु के प्रमुख अवतारों का वर्णन व उनकी उपासना की पद्धति निर्दिष्ट है। इसके प्रथम अंश के 22 अध्यायों में समुद्रमंथन, ध्रुव और प्रह्लाद की कथाएँ हैं। इसी अंश के सातवें अध्याय में मनुवंश का वर्णन है, जिसमें स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की उत्पत्ति का प्रसंग अनूठा ही है। प्रजापति ब्रह्मा सनत्, सनन्दन आदि कुमारों के द्वारा सृष्टिकर्म की अवज्ञा से रुष्ट हो जाते हैं, रोषावेग में उनके ललाट से अर्धनारीश्वर देह वाले रुद्र का जन्म होता है। रुद्र के इस अर्धनारीश्वर रूप से पुरुष और स्त्री तथा मनु और शतरूपा का जन्म होता है। तेरहवें अध्याय में पृथु का चरित्र है। गोरूप पृथ्वी के दोहन का यह आख्यान कृषिप्रधान सभ्यता के अवतरण का द्योतक है। पृथु पर्वतों को हटा हटा कर ऊबड़खाबड़ धरती को समतल और कृषि योग्य बना देते हैं। द्वितीय अंश के 16 अध्यायों में ब्रह्माण्ड, सप्तद्वीप तथा भारतवर्ष और राजा भरत का वर्णन है। तृतीय अंश के 18 अध्यायों में मनु और मन्वंतर तथा जैन और बौद्ध सम्प्रदायों का विवरण है। इसी अंश में 28 वेदव्यासों, उनमें कृष्णद्वैपायन व्यास की महिमा, वेदों के शाखा-विभागों, गृहस्थ के सदाचारों तथा विविध कार्यकलापों और संस्कारों, श्राद्धविधि आदि के भी प्रसंग हैं। चतुर्थ अंश के चौबीस अध्यायों में सूर्य और चंद्र वंश के राजाओं के साथ अनेक महत्त्वपूर्ण आख्यान हैं। इसी अंश में मगध के वर्णन से लगा कर नंद और मौर्य राजाओं का भी विवरण है तथा कलियुग के निरूपण के साथ कल्कि अवतार की भविष्यवाणी की गयी है। पंचम अंश के 38 अध्यायों में कृष्ण कथा है, जो हरिवंश पुराण से साम्य रखती है। छठे अंश में आठ ही अध्याय हैं, इसमें स्वाध्याय, योग, वैष्णव धर्म और दर्शन का विशेष निरूपण है। प्राचीन इतिहास के विवेचन की दृष्टि से भी यह पुराण बहुत उपादेय है, विशेष रूप से मौर्य राजाओं की वंशावली इसमें दी गयी है। कृष्णलीलाओं का सरस वर्णन इस पुराण में किया गया है।

(11) *वायुपुराण* — इस पुराण में 112 अध्याय तथा लगभग 24,000 श्लोक हैं। *देवीभागवत* के अनुसार इसकी श्लोक संख्या 24,600 है। पं. बलदेव उपाध्याय 103वें अध्याय तक के अंश को ही प्रामाणिक मानते हैं, उनके अनुसार अंत के नौ अध्याय (104-112) वैष्णवमत के प्रतिपादन के लिए किसी परवर्ती आचार्य ने जोड़े हैं।[16] 103वें अध्याय में पुराण की फलश्रुति बता दी गयी है। 104वें अध्याय में राधा व कृष्ण के प्रेम का अत्यंत सरस चित्रण तथा माधुर्य भक्ति का विशदीकरण है। शेष अध्याय गया माहात्म्य से सम्बद्ध हैं। इनमें भी गया के अधिष्ठातृदेव के रूप में विष्णु का निरूपण है।

इस पुराण के छठे अध्याय में वराहावतार व पृथ्वी का सन्निवेश, 37वें में भवन-विन्यास व पृथ्वी का भूगोल तथा उसके बाद के अध्यायों में सात द्वीपों के वर्णन के प्रसंग उल्लेखनीय हैं।

वायुपुराण के चार भाग हैं— प्रक्रियापाद (अ. 1-6), उपोद्घातपाद (अ. 7-64), अनुषंगपाद (अ. 65-99) तथा उपसंहारपाद (अ. 100-12)। प्राचीनता तथा पुराण के पंचलक्षणों के विनियोग की दृष्टि से यह बड़ा ही प्रामाणिक पुराण है। *महाभारत* वनपर्व (191.16) में वायुप्रोक्त पुराण का उल्लेख है। बाण ने हर्षचरित में अपने मित्र पुस्तकवाचक सुदृष्टि के द्वारा *वायुपुराण* के पाठ का वर्णन किया है। एक प्रमुख शैवपुराण होने से कहीं कहीं इसी को शिवपुराण माना गया है, जबकि शिवपुराण इससे सर्वथा भिन्न है। बलदेव उपाध्याय ने शिवपुराण में पुराण के लक्षण की असंगति तथा *वायुपुराण*

---

[16] *भारतीय साहित्य का अध्ययन*— बलदेव उपाध्याय : 101.

में लक्षणसंगति का प्रतिपादन करते हुए शिवपुराण की महापुराणों में गणना का दृढ़ता से प्रतिवाद किया है।[17] इसमें गुप्त राजाओं का वर्णन है। शिव की स्तुति दी गयी है। दो अध्यायों में विष्णु के चरित का भी निरूपण है। नैमिषारण्य का नाम नैमिष क्यों पड़ा इसको ले कर नैमिष यज्ञ की कथा यहाँ दूसरे अध्याय में दी गयी है। अठासीवें अध्याय में धुंधुमार की कथा भी इस पुराण में अनूठी है। गया तीर्थ के निरूपण तथा पितरों के श्राद्ध के वर्णन की दृष्टि से भी यह पुराण उल्लेखनीय है। इसमें नृत्य तथा संगीत की कला पर भी कुछ अध्याय हैं।

(12) *अग्निपुराण* — विभिन्न पुराणों में इसकी श्लोक संख्या 15,400 दी गयी है। किंतु वर्तमान में इसमें लगभग 11,500 श्लोक मिलते हैं। *देवीभागवत पुराण* में इसकी श्लोकसंख्या 16,000 कही गयी है। इस पुराण में 383 अध्याय हैं। 282वें अध्याय में वृक्षायुर्वेद का विस्तृत प्रकरण है, इसके आगे के चार अध्यायों में आयुर्वेद के अनुसार विभिन्न रोगों की चिकित्सा का। 287 से 292 तक के अध्यायों में अश्वचिकित्सा, गजचिकित्सा तथा गवायुर्वेद (गौचिकित्सा) के प्रकरण हैं। मंत्रचिकित्सा के प्रकरण भी विस्तार से दिये गये हैं। 336वें अध्याय में शिक्षा (फ़ोनेटिक्स), 337 वें में काव्यशास्त्र, 338वें में नाट्यशास्त्र, 339वें रस, 340वें से 347वें तक के अध्यायों में रीति,अलंकार, गुण, दोष, नृत्य, राग, अभिनय आदि विषय हैं। व्याकरण, योग, तंत्र तथा शरीर विज्ञान के भी सारे विषय *अग्निपुराण* में हैं।

इसमें अग्निदेवता वसिष्ठ ऋषि को उपदेश देते हैं। *अग्निपुराण* को भारतीय संस्कृति का विश्वकोश भी कहा जाता है। इसमें अनेक विद्याओं, कलाओं और शास्त्रों का निचोड़ पुराणकार ने प्रस्तुत किया है। इस पुराण विभिन्न देवों की प्रतिमाएँ बनाने की विधि का बहुत उपादेय निरूपण है। अध्याय 5 से 11 तक रामोपाख्यान और अध्याय 13 से 15 तक *महाभारतोपाख्यान* में *रामायण* तथा *महाभारत* इन दोनों ग्रंथों का सार प्रामाणिक रूप में दिया गया है। शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से इस पुराण में काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, गणित, भूगोल, आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीतशास्त्र, कर्मकाण्ड, विभिन्न संस्कार, वास्तु, शकुन आदि का क्रमबद्ध और व्यवस्थित प्रतिपादन है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के समान ही यह पुराण भी साहित्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी नाट्यशास्त्रविषयक कारिकाओं पर भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* की छाया है। इसके 337वें अध्याय में बारह प्रकार के रूपक, उपरूपक (उपरूपक संज्ञा का प्रयोग नहीं हुआ है), अर्थप्रकृतियाँ, संधि आदि विषय विवेचित हैं, 338वें अध्याय में भाव, नायक, नायिका तथा 339वें में वृत्ति, 340वें में नृत्य और 341वें अ. में अभिनय का विवेचन है।

अग्निपुराण का समय सातवीं शताब्दी के बाद माना जाता है, पर इसका काव्यशास्त्रविषयक विवेचन सम्भवत: और भी बाद में 900 ई. के आसपास या इसके और भी कुछ बाद में जोड़ा गया होगा।

(13) *नारदपुराण*— *देवीभागवत* आदि पुराणों के अनुसार इस पुराण की श्लोक संख्या 25,000 है, पर प्रकाशित संस्करण में 18,000 के लगभग श्लोक हैं। इस पुराण का दूसरा नाम बृहन्नारदीयपुराण या नारदीयपुराण भी प्रचलित है। पूर्व और उत्तर दो खण्डों में विभाजित इस पुराण के पूर्व खण्ड में 125 तथा उत्तरखण्ड में 82 अध्याय हैं। विष्णुविषयक बहुविध कथाओं से यह भरपूर है। वेदांतदर्शन का प्रतिपादन शुक व जनक के संवाद में पूर्वखण्ड के अध्याय 60 से 62 में किया गया है तथा 63वें अध्याय में पाशुपतदर्शन का विवेचन भी है। इस पुराण में सोलह महापुराणों की विषयानुक्रमणी दी हुई है।

यह वैष्णवपुराण है। इसमें विष्णु की उपासना का विशेष प्रतिपादन है। धर्म और दर्शन तथा धर्मशास्त्र के भी अनेक विषय इसमें निरूपित हैं। इसमें सारे पुराणों के विषयों की सूची भी दी गयी

---

[17] वही : 105.

है, जो पुराणों के अनुशीलन व संदर्भ के लिए बहुत उपादेय है। इसके अतिरिक्त यह पुराण वेदांगों, तंत्र-मंत्र, श्राद्ध, प्रायश्चित, पापकर्म व नरकवर्णन आदि का भी निरूपण करता है। व्रत विषयक कथाओं की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण है।

(14) *पद्मपुराण* — इस पुराण में लगभग 55,000 श्लोक हैं। अधिकांश पुराणों ने इसकी श्लोकसंख्या 55000 ही बताई है, केवल *ब्रह्मवैवर्त पुराण* इसमें 59,000 श्लोक होने की बात कहता है। इसमें यही श्लोकसंख्या बताते हुए *देवीभागवत* ने इसे विपुल या विशालकाय पुराण कहा है। यह सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, पाताल और उत्तर— नाम के पाँच खण्डों में विभाजित है। सृष्टिखण्ड के 82 अध्यायों के प्रमुख विषय हैं- ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि की रचना, समुद्रमंथन की कथा, सूर्यवंशीय और चंद्रवंशीय तथा अन्य क्षत्रिय राजाओं का इतिहास, देवासुरयुद्ध, तीर्थ, रामायणकथा तथा कार्तिकेय, अगस्त्य आदि के चरित। मधुकैटभवध, वृत्रासुरवध, तारकासुर की कथा तथा राम के द्वारा शूद्रक के वध की कथा भी यहाँ है। भूमिखण्ड में दिति और दनु की कथा, सोम शर्मा, सुव्रत, वृत्रासुर आदि की कथाओं के साथ प्रह्लाद व च्यवन ऋषि के चरित तथा विष्णुभक्ति का प्रतिपादन है। पृथु और वेन के प्रसंग के साथ जैन धर्म की चर्चा भी यहाँ हुई है। नहुष और ययाति के प्रसंग 64वें से 83वें अध्याय तक विस्तारित है, ययाति को परम वैष्णव तथा विष्णुभक्त चित्रित कर दिया गया है। स्वर्गखण्ड में विभिन्न लोकों के विवरणों के साथ शिव के द्वारा त्रिपुरदाह, शकुंतला और उर्वशी की कथाएँ भी हैं। पातालखण्ड के विषयों में राम के जीवन के विविध प्रसंग हैं, उनका सीतापरित्याग तथा सीता से पुनर्मिलन व अश्वमेधयज्ञ यहाँ वर्णित है। राधाकृष्ण की कथाएँ उल्लेखनीय हैं। *पद्मपुराण* का उत्तरखण्ड आकार में सर्वाधिक विशाल है। जालंधर और वृंदा या तुलसी की कथा अध्याय 2 से 19 तक विस्तारित है। इस खण्ड के 282 अध्यायों में विभिन्न व्रतों, उपासनाओं, विष्णुभक्ति, राम तथा कृष्ण की कथाएँ, भगवद्गीता की महिमा आदि विषय प्रतिपादित हैं। भारत के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के निरूपण की दृष्टि से यह पुराण विशेष महत्त्व का है। वैष्णव धर्म तथा दर्शन का इसमें विशेष विचार है और इस प्रसंग में शालिग्राम की पूजा तथा तुलसी के माहात्म्य को भी बताया गया है। यद्यपि यह वैष्णव पुराण है, पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों देवों की एकता और तीनों के प्रति समान श्रद्धा रखने पर इसमें बल दिया गया है। इसमें विभिन्न तीर्थस्थलों, व्रतों व अनुष्ठानों का भी विशद वर्णन है। रामोपाख्यान, शकुंतलोपाख्यान आदि आख्यान भी इसमें हैं, पर रामायण और *महाभारत* की अपेक्षा इनका निरूपण कालिदास के *रघुवंश* और *शाकुंतल* के प्रभावित प्रतीत होता है। इसके विश्वकोशात्मक स्वरूप के कारण व्रत, उद्यापन या माहात्म्य से संबंधित अनेक छोटी मोटी पोथियाँ इसमें मिला दी गयी हैं।

(15) *लिंगपुराण*— इस पुराण में 55 अध्याय तथा लगभग 11,000 श्लोक हैं। यह शैव पुराण है। इसमें शिवविषयक बहुविध आख्यान हैं। शिव के 28 अवतारों की कथाएँ इसमें वर्णित है। 93वें अध्याय में अंधकासुर के वध की कथा है, जो संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकवि रत्नाकर के हरविजय महाकाव्य का स्रोत है। 94वें से 96वें अध्याय तक शरभावतार की कथा में विष्णु के नरसिंह अवतार को पराभूत करने वाले शिव के शरभ अवतार का प्रसंग है। शिवपूजन की विधि शैवतंत्र और शैवदर्शन का भी यहाँ सविस्तार प्रतिपादन किया गया है। इस पुराण में भी भागवत के समान कुछ अंश गद्य में है।

(16) *गरुड़पुराण*— इस पुराण में लगभग 18,000 श्लोक हैं। *भागवत, नारद, ब्रह्मवैवर्त* और *देवीभागवत पुराण* इसकी श्लोकसंख्या 19,000 बताते हैं। *देवीभागवत* इसे हरिभाषित (विष्णु के द्वारा कहा गया) कहता है। *नारदपुराण* में इस पुराण की विषयसूची 324 श्लोकों में दी गयी है। यह वैष्णव पुराण है। इसका स्वरूप भी विश्वकोशात्मक है। जीव की उत्पत्ति व मृत्यु के बाद उसकी स्थिति का वर्णन इसमें किया गया है। अपने स्वजन की मृत्यु होने पर परिवार में इसका पाठ कराया जाता है। विष्णुभक्ति, प्रायश्चित, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद आदि विषय भी वर्णित हैं। कुलाचार किस तरह अंधविश्वासों व रूढ़ियों में जकड़ते चले गये— यह भी इस पुराण के अनेक प्रसंगों से जाना जा सकता

है। पुराणकार की दृष्टि तो जैसे पण्डे पुजारियों के व्यावसायिक हितों से जुड़ गयी है। स्त्री के पतिव्रता रूप को इस अधोगति तक पहुँचाया गया है कि एक सती नारी अपने अपंग और कोढ़ी पति को उसकी चहेती वेश्या के घर तक कंधे पर बिठा कर ले जाती है, और वेश्या के द्वारा दुत्कारी जाने पर भी अतिरिक्त शुल्क दे कर पति को वेश्या से मिलवाती है। दुर्भाग्य से चोरी के झूठे अपराध में धर लिए गये माण्डव्य ऋषि इसी समय फाँसी के लिए ले जाए जा रहे हैं। पत्नी के कंधे पर सवार कुष्ठी कौशिक ब्राह्मण का पाँव उनसे छू जाता है, वे कौशिक को शाप देते हैं कि सूर्योदय होते ही तेरी मृत्यु हो जाएगी। जो ऋषि झूठा अपराध लगा कर दी जा रही फाँसी से अपने को नहीं बचा सकते, वे दूसरे की मृत्यु का विधान रच सकते हैं। फिर तो पतिव्रता के प्रताप से सूर्य ही उगते उगते रह जाते हैं, संसार अँधेरे में बिलबिलाता रहता है। अत्रि की उसी स्तर की पतिव्रता पत्नी अनुसूया की स्तुति की जाती है, तब जा कर सूर्य उग पाते हैं।

(17) *कूर्मपुराण—* यह पुराण अपूर्ण प्राप्त होता है। *देवीभागवत* तथा *नारदपुराण* के अनुसार इसकी श्लोक संख्या 17,000 है, जबकि वर्तमान में इसका लगभग 6000 श्लोकों का अपूर्ण भाग ही मिला है। इसकी ब्राह्मी, भागवती, सौरी तथा वैष्णवी इन चार संहिताओं का उल्लेख मिलता है। इनमें से ब्राह्मी संहिता उपलब्ध है। इसमें विष्णु के अवतारों का — विशेषत: कूर्मावतार का— वर्णन है। *ईश्वरगीता* तथा *व्यासगीता* ये दो गीताएँ भी इसी पुराण में संगृहीत हैं। सांख्यदर्शन का विस्तार से निरूपण है। गार्हस्थ्यधर्म, भक्ष्याभक्ष्य, श्राद्ध आदि पर भी विस्तृत विचार है।

(18) *स्कंदपुराण —* *स्कंदपुराण* आकार में सबसे विशाल पुराण है। इसकी संज्ञा शिव के पुत्र स्कंद (कार्तिकेय) के नाम पर है। इसका विभाजन दो प्रकार से हुआ है– संहिताओं तथा खण्डों में। इसमें छह संहिताएँ तथा 81,000 श्लोक हैं। *देवीभागवत* ने इतनी ही इसकी श्लोक संख्या बताई है। *सत्यनारायणकथा* के लेखक ने अपनी कथा को *स्कंदपुराण* के अंतर्गत बताया है, जब कि यह कथा मूलत: इस पुराण में नहीं है। अम्बिकाखण्ड जैसा विशाल खण्ड नेपाल से संबंधित इस पुराण में बाद में जोड़ा गया।

इतने अधिक विषय इस पुराण में समेटे गये हैं कि वेंकटेश्वर प्रेस से छपे संस्करण की यदि केवल विषयानुक्रमणी छापी जाए तो वह डेढ़ सौ पृष्ठों में होगी। *नारदपुराण* में 213 श्लोकों में इसकी विषयानुक्रणी संक्षेप में बनाई गयी है।

महाभारत के बाद यह पुराण इतिहास की भारतीय परम्परा का सबसे विशालकाय ग्रंथ है। इसकी संहिताओं के नाम हैं— सनत्कुमार, सूत, शंकर, वैष्णव, ब्रह्म और सौर। खण्डों की संज्ञाएँ इस प्रकार हैं— माहेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, अवंती, नागर तथा प्रभास। इनमें अवंती खण्ड रेवाखण्ड के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें देश के सारे तीर्थो का विस्तार से वर्णन है। प्राचीन भारत के भूगोल के अध्ययन के लिए इसमें अपार सामग्री है। काशीखण्ड में वाराणसी तथा उसके आसपास के स्थलों का वर्णन तथा रेवाखण्ड में नर्मदा संबंधी कथाएँ और उसके तटवर्ती प्रदेशों का प्रामाणिक वर्णन है। अंबिकाखण्ड नेपालखण्ड भी इसका एक भाग माना गया है, जिसमें नेपाल देश के तीर्थों का वर्णन है।

उपपुराण

उपपुराणों का निर्धारण निश्चित रूप से करना कठिन है। एक पारम्परिक मत[18] में उपपुराणों की उत्पत्ति महापुराणों से ही मानी गयी है। तदनुसार *पद्मपुराण* से नरसिंहविषयक कथाएँ ले कर *नारसिंहपुराण* की तथा *भविष्यपुराण* से सांबविषयक कथा ले कर *सांबपुराण* की रचना की गयी। पर सारे उपपुराणों पर यह प्रक्रिया लागू नहीं हो सकती, न उपपुराणों को महापुराणों का अंग मात्र मानना

[18] *मत्स्यपुराण,* 53 : 60-64.

ही उचित है। *गरुड़पुराण* में सनत्कुमार, नारसिंह, स्कंद, शिव, शिवधर्म, आश्चर्य, नारदीय, कापिल, वामन, औशनस, ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मारीच तथा भार्गव— ये अठारह उपपुराण गिनाए गये हैं। इस सूची में वामन और ब्रह्माण्ड पुराणों को भी जोड़ लिया गया है, जब कि अन्य मत में ये मुख्य पुराणों या महापुराणों में परिगणित हैं। देवी भागवत में उपपुराणों की गिनती इस प्रकार है—

सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम्।
नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम्॥
कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम्।
वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नंदिकृतं शुभम्॥
सौरं पाराशरप्रोक्तमादित्यं च सविस्तरम् ।
एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः॥ (*देवीभागवत*, 1.3.12-14)

इस सूची में सौर (सूर्यसंबंधी) पुराण के अतिरिक्त आदित्यपुराण को सम्मिलित किया गया है, उशना (शुक्राचार्य) से सम्बद्ध औशनस पुराण भी यहाँ परिगणित है। ब्रह्माण्ड और ब्रह्मपुराण इस सूची में नहीं हैं।

एक दूसरे मत से चण्डीपुराण, मानवपुराण, गणेशपुराण, नंदपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, दुर्वासापुराण, माहेश्वरपुराण, भार्गवपुराण तथा कल्किपुराण की भी उपपुराणों में गिनती की गयी है।

हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिंतामणि में अठारह उपपुराण इस प्रकार गिनाए हैं—

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्।
तृतीयं नान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्॥
चतुर्थं शिवधर्माख्यं सात्रान्नन्दीशभाषितम्।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्॥
कापिलं मानवं चैव तथैवौशनसं परम्।
ब्रह्माण्डं वारुणं चैव कालिकाह्वयमेव च॥
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसाधकम्।
पराशरोक्तं प्रथमं तथा भागवतद्वयम्॥

वास्तव में तो अलग-अलग पुराणों में 18-18 उपपुराणों की जो सूचियाँ दी गयी हैं, उनमें परस्पर इतना अधिक भेद है कि यदि सबको मिलाया जाए, तो उपपुराणों का कुल संख्या सौ से भी अधिक हो जाती है।[19] अलबिरूनी ने अपने भारतभ्रमणवृत्तांत में आदित्य, सोम, सांब, नृसिंह आदि उपपुराणों का विवरण दिया है।

श्रीधरस्वामी के शिष्य तथा *देवीभागवत* के टीकाकार नीलकण्ठ ने अपनी टीका में कहा है कि उपपुराणों तथा औपपुराणों का मूल अठारह (महा) पुराण हैं। पर यह मानना उचित नहीं लगता कि उपपुराण महापुराणों के आधार पर बनाए गये, और वे सब महापुराणों से परवर्ती ही हैं। वर्तमान में महापुराण जिस रूप में उपलब्ध हैं, उनसे तो कुछ उपपुराण उनसे प्राचीनतर हो सकते हैं। लीलाधर वियोगी ने तो कुछ उपपुराणों को पहली शताब्दी ई. के आसपास रचा हुआ बताया है। चार उपपुराणों का उल्लेख मत्स्यपुराण में मिलता है, वे भी 450 ई. या इससे पहले रचे जा चुके होंगे।[20]

उपपुराणों में आने से रह गये पुराणों को औप (उप+उप) पुराण कहा जाने लगा। अठारह महापुराण है, अठारह उपपुराण और अठारह औपपुराण। अठारह की संख्या को ले कर आग्रह ने सूचियों का परिसीमन किया है, अन्यथा पुराण इतने अधिक हैं कि गिनना कठिन है। बृहद्विवेक नामक ग्रंथ में महापुराणों तथा उपपुराणों का घालमेल कर तथा कुछ नये पुराण और मिला कर अठारह औपपुराणों

---

[19] डॉ. ब्रजेशकुमार शुक्ल ने आद्यपुराण की भूमिका में इन सूचियों का संकलन किया है.
[20] *उपपुराणदिग्दर्शन* : 11.

की सूची इस तरह दी गयी है—

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत्।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च॥
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वसिष्ठं भार्गवं तथा।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः॥
बृहद्धर्मं परमानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा।
हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्॥[21]

इस सूची में कूर्म, भागवत और वह्नि (*अग्निपुराण*) जैसे महापुराणों तक को औपपुराण बता दिया गया है, जब कि परमानंद, वसिष्ठ, भार्गव आदि नये नाम भी इसमें हैं।

उपपुराणों का संबंध देशविशेष या स्थलविशेष से रहा है। किसी विशेष प्रांत का इतिहास भी इनमें मिलता है। जैसे कल्किपुराण में सिंहल द्वीप का वर्णन विशेष रूप से किया गया है।

शिवपुराण

उपपुराणों में सर्वाधिक प्रचलित पुराण शिवपुराण है। अलबिरूनी ने इस पुराण का उल्लेख किया है, अतः इसका रचनाकाल ग्यारहवीं शती के पूर्व होना चाहिए। तिरुमल्लेनाथ ने इसका तमिल में अनुवाद किया है, जिसके कुछ अंश हस्तलिखित रूप में प्राप्त होते हैं।[22] इस पुराण में प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रतिपादन करते हुए शिवसूत्र तथा शिवसूत्रवार्तिक का उल्लेख किया गया है। शिवसूत्र के प्रणेता वसुगुप्त हैं, जो काश्मीर नरेश अवंतिवर्मा (853-888 ई.) के समकालीन थे। शिवसूत्र पर भास्कर और वरदराज के वार्तिक मिलते हैं। भास्कर का समय 950 ई. के आसपास है, तथा वरदराज का 900 ई. के आसपास। पं. बलदेव उपाध्याय शिवपुराण में उल्लिखित वार्तिक से आशय भास्करकृत वार्तिक से ही मानते हैं। ऐसी स्थिति में शिवपुराण का रचनाकाल 850 ई.से 1030 ई. के बीच है।

इस पुराण के प्रणेता ने कश्मीरशैवदर्शन के ग्रंथों के साथ कालिदास के काव्यों का भी अध्ययन किया था। शिवपार्वतीविवाह आदि के प्रसंगों में कालिदास के कुमारसम्भव की शब्दावली तथा कल्पनाएँ शिवपुराण के श्लोकों में स्पष्ट प्रतिबिम्बित हैं।

इस पुराण में 24,000 श्लोक तथा सातसंहिताएँ हैं। संहिताओं के नाम इस प्रकार हैं— *विद्येश्वरसंहिता* (25 अध्याय), *रुद्रसंहिता* (197 अध्याय), *शतरुद्रसंहिता* (42अध्याय), *कोटिरुद्रसंहिता* (43 अध्याय), *उमासंहिता* (51 अध्याय), *कैलाससंहिता* (23 अध्याय) तथा *वायवीयसंहिता*— यह पूर्वभाग और उत्तरभाग दो भागों में विभक्त है। पहले में 35 तथा दूसरे में 41 अध्याय हैं। इनमें *रुद्रसंहिता* सर्वाधिक विशाल है, और सृष्टिखण्ड, सतीखण्ड, पार्वतीखण्ड, कुमारखण्ड तथा युद्ध खण्ड नाम से पाँच भागों में विभक्त है।

शिव की उपासना, शैव धर्म तथा दर्शन और शिव विषयक कथाओं का यह प्रामाणिक और विस्तृत संग्रह है।

देवीभागवत

दूसरा अत्यधिक प्रचलित उपपुराण *देवीभागवत* है। भ्रमवश कहीं-कहीं *भागवतपुराण* को भी *देवीभागवत* समझ लिया जाता है, जब कि *देवीभागवत* भागवत महापुराण से सर्वथा पृथक् स्वतंत्र पुराण है।

पुराणकार ने आरम्भ में भी इस पुराण की रूपरेखा बताते हुए इसके आकार-प्रकार का विवरण भी दे दिया है, जिसके अनुसार इसके बारह स्कंधों (खण्डों) में कुल 318 अध्याय और अठारह हज़ार

---

[21] वही :12 पर उद्धृत.

[22] *भारतीय साहित्य का अध्ययन*— बलदेव उपाध्याय : 108.

श्लोक हैं। पहले स्कंध में बीस, दूसरे में बारह, तीसरे में तीस, चौथे में पच्चीस, पाँचवें में पैंतीस, छठे में इकतीस, सातवें में चालीस, आठवें में पाँच, नवें में पचास, दसवें में तेरह, ग्यारहवें में चौबीस तथा बारहवें में चौदह अध्याय हैं।

अठारह महापुराणों में भी हर एक की अलग अलग कुल श्लोकसंख्या जिस तरह *देवीभागवत* में दी गयी है, इससे लगता है कि इस पुराण के लेखक के पास इन महापुराणों की पोथियाँ रही होंगी।

यह शाक्त पुराण है तथा देवी या शक्ति की पूजा, उनके अवतारों और तद्विषयक कथाओं का विपुल संग्रह इसमें हुआ है। शक्तितत्त्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म निर्गुण रूप में योगगम्य तथा इस समस्त सृष्टि का आधार है, वही सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी शक्तियों के रूप में महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली के रूप में प्रकट होता है।[23]

अनेक कथाएँ और उपाख्यान *देवीभागवत* में हैं। वीरसेन, सुदर्शन और शशिकला की कथाएँ तथा सुशील वैश्य का उपाख्यान चौथे स्कंध में है। इसी स्कंध के 28वें से 30वें अध्याय तक रामोपाख्यान है, जिसमें नारद के उपदेश से राम देवी पूजा करते हैं। चौथे स्कंध में प्रह्लाद, नर-नारायण आदि कथाओं के पश्चात् कृष्णचरित्र का विस्तार से निरूपण है। पंचम स्कंध में महिषासुरवध तथा देवी के रक्तबीज से युद्ध की कथा है। सप्तम स्कंध में सुकन्या और च्यवन, सत्यव्रत, त्रिशंकु, हरिश्चंद्र आदि की कथाओं के साथ देवीगीता जोड़ी गयी है। अष्टमस्कंध में भुवनकोश के अंतर्गत सातों महाद्वीपों का वर्णन करते हुए पुराणकार ने भारत वर्ष का विस्तार से वर्णन किया है। नवम स्कंध में गंगोपाख्यान, तुलसी और शंखचूड़ का उपाख्यान, सावित्री, स्वाहा तथा स्वधा आदि के उपाख्यान हैं। दशम स्कंध में अगस्त्य, सुरथ राजा के चरित्रों के साथ तथा शुम्भनिशुम्भ के वध के उपाख्यान हैं। ग्यारहवें और बारहवें स्कंधों में विभिन्न आनुष्ठानिक क्रियाओं तथा स्तोत्रों का निरूपण है।

इसका रचनाकाल नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी ई. के मध्य माना गया है। देवी के विभिन्न रूप इस पुराण में वर्णित हैं, जिनमें राधा के चरित्र को महिमान्वित किया गया है।

नरसिंहपुराण

नरसिंहपुराण वैष्णवपुराणों में महत्त्वपूर्ण है। इसका विभाजन अध्यायों में हुआ है। कुल 68 अध्यायों से समन्वित इस पुराण में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर, वंशानुचरित— ये पुराणांतर्गत मान्य पाँचों विषय समाहित हैं। प्रथम पाँच अध्यायों में सर्ग व अनुसर्गों का वर्णन है। प्रथम अध्याय में सृष्टि प्रक्रिया का सांख्य दर्शन सम्मत निरूपण विशद रूप में किया गया है। तीसरे अध्याय में ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि के उपक्रम का निरूपण करते हुए नवधा सृष्टि का विस्तार से वर्णन है। नारायण को संसार का जनक मानते हुए कहा गया है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अनंतस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

(जल की उत्पत्ति भगवान् नारायण से हुई है, इसलिए जल की एक संज्ञा नार है। यह नार ही उनका आदि शयनस्थान भी है,अतः वे नारायण कहे जाते हैं।)

छठे अध्याय में अगस्त्य तथा वशिष्ठ का मित्रावरुण से जन्म, सातवें से ग्यारहवें अध्यायों तक में मार्कण्डेय का तप, यम के दूतों से शिव के द्वारा उनकी रक्षा, विवाह आदि के प्रसंग हैं। यम-यमी संवाद, संसारवृक्ष, सूर्य और संज्ञा की संततियों आदि प्रसंग भी इस पुराण में विशिष्ट हैं। अवशिष्ट अध्यायों में चंद्रवंश, सूर्यवंश, विष्णु के दसों अवतारों का वर्णन है।

रामावतार का वर्णन इस पुराण में अनेक नवीन वृत्तांतों के समायोजन के कारण विशिष्ट है। उदाहरणार्थ राम को मनाने के लिए भरत के चित्रकूट की ओर प्रयाण के समय निषादराज गुह यह

---

[23] *देवीभागवत,* 1.2.19-20.

समझ कर कि भरत राम पर आक्रमण करने जा रहे हैं, उनसे युद्ध के लिए अपनी सेना के साथ तैयार हो जाता है। *रामचरितमानस* में तुलसीदास इस प्रसंग से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

मत्वा तं भरतं शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा।
स्वं सैन्यं वर्तुलं कृत्वा सन्नद्धः कवची रथी॥
महाबलपरीवारो रुरोध भरतं पथि।
सभातृकं सभार्यं मे रामं स्वामिनमुत्तमम्॥
प्रापयस्त्वं वनं दुष्ट साम्प्रतं हन्तुमिच्छसि।
गमिष्यसि दुरात्मंस्त्वं सेनया सह दुर्मते॥
इत्युक्तो भरतस्तत्र गुहेन नृपनंदनः।
तमुवाच विनीतात्मा रामायाथ कृताभ्लिः॥
यथा त्वं रामभक्तोऽसि तथाऽहमपि भक्तिमान्॥ (48.131-35)

(भरत को इतनी बड़ी सेना के साथ आते देख कर उनको राम का शत्रु समझ कर रामभक्त गुह ने अपनी सेना युद्ध के लिए सज्जित कर के वर्तुलाकार खड़ी कर दी, फिर उसने स्वयं भी कवच धारण कर रथ पर सवार हो कर मार्ग में भरत को रोक लिया। वह उनसे बोला— मेरे उत्तम स्वामी राम को तू ने वन भेज दिया और अब तू भाई और भार्या के साथ उन्हें मारना चाहता है। हे दुरात्मन्, तू सेना के साथ इसी लिए वहाँ जा रहा है?)

विनीतात्मा भरत ने उससे राम के लिए हाथ जोड़ कर कहा— जैसे तुम राम के भक्त हो, वैसे मैं भी उनके लिए भक्ति रखता हूँ।)

इसी प्रकार सीताहरण के पूर्व संन्यासी के वेष में रावण सीता के पास जा कर कहता है कि भरत का अनुरोध मान कर राम अयोध्या जा रहे हैं, जिस सुनहरे मृगशिशु को लाने के लिए तुमने अनुरोध किया था, उसे उन्होंने पकड़ लिया है। अब वे और लक्ष्मण प्रस्थान करने ही वाले हैं, तुम्हारे लिए यह रथ भेजा है, उसमें आरूढ़ हो जाओ। सीता उसके धोखे में आकर रथ पर बैठ जाती हैं। शबरी का एक तपस्विनी के रूप में चित्रण है, तथा उसके द्वारा राम का बदरी आदि फलों से सत्कार करने का वर्णन भी किया गया है। अनेक पौराणिक पात्रों को इस पुराण में विष्णु का भक्त बना दिया गया है। उदाहरणार्थ चौबीसवें अध्याय में राजा इक्ष्वाकु भदवद्भक्त हैं। *भागवतपुराण* का सर्वातिशायी प्रभाव इस पुराण पर प्रतीत होता है। नरसिंह के उग्ररूप का चित्रण अत्यंत ओजस्वी है। हिरण्यकशिपु का वर्णन रौद्ररस का पोषक है। यथा—

नीलांशुमिश्रमाणिक्यद्युतिच्छन्नविभूषणम् ।
सधूमाग्निमिव व्याप्तमुच्चासनचितिस्थितम्॥
दंष्ट्रोत्कटैर्घोरतरैर्घनच्छविभिरुद्भटैः।
कुमार्गदर्शिभिर्दैत्यैर्यमदूतैरिवावृतम्॥

(वह हिरण्यकशिपु ऊँचे आसन पर बैठा था। नीले अंशुक की प्रभा से उसके विभूषण आच्छन्न थे, जिससे वह धुएँ से घिरे, सब ओर व्याप्त अग्नि की तरह लगता था। बाहर निकली डाढ़ों वाले, घोरतर तथा काले बादलों जैसी छवि वाले कुमार्गदर्शी उद्भट तथा यमदूतों जैसे दैत्य से वह घिरा हुआ था।)

इन पद्यों में हिरण्यकशिपु के लिए सधूमाग्निमिव व्याप्तम् तथा दैत्यों के लिए घनच्छविभिः ये दोनों उपमाएँ प्रसंगानुकूल हैं। सम्पूर्ण वर्णन दृश्य को आँखों के सामने साकार कर देता है, अतः भाविक अलंकार का उत्तम प्रयोग पुराणकार ने किया है।

आकार में किंचित् लघु होते हुए भी यह एक समग्र पुराण है। भाषा और शैली के सौंदर्य, शब्दसौष्ठव तथा आलंकारिक पदावली के साथ काव्यात्मकता भी इसमें भरपूर है। आरम्भ में ही नरसिंह के स्तवन में कहा है—

तप्तहाटककेशांतज्वलत्पावकलोचन।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते॥
पांतु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः॥ (1.2-3)

(तप्त स्वर्ण के समान पीत केशों के भीतर प्रज्वलित अग्नि की भाँति आपके देदीप्यमान नेत्रों वाले तथा वज्र से भी अधिक कठोर नखस्पर्श वाले हे दिव्य सिंह, आपको नमन!

भगवान् नरसिंह के नखरूपी लांगल या हल की वे नोकें जो हिरण्यकशिपु के वक्ष:स्थलरूपी क्षेत्र के रक्तरूपी कर्दम से लाल लाल हैं आपकी रक्षा करें।)

गणेशपुराण

गणेशपुराण सोलहवीं शताब्दी के पूर्व लिखा जा चुका था। यह दो खण्डों में विभाजित है— उपासना तथा क्रीड़ा। पहले में 92 अध्याय तथा 4,093 श्लोक हैं और दूसरे में 155 अध्याय तथा 6,986 श्लोक हैं। गणेशपुराण तथा भार्गव पुराण को रामकरण शर्मा ने अभिन्न माना है। *गणेशपुराण* में त्रिकालज्ञ भृगु ऋषि तथा राजा सौराष्ट्र सोमकांत का संवाद है। भृगु बताते हैं कि सोमकांत पूर्वजन्म में कमंद नामक वैश्य था, जिसे उसकी पत्नी कुमुदिनी ने उसकी उच्छृंखलता के कारण त्याग दिया। वह जंगल में जा कर दस्यु बन गया। एक बार गुणवर्धन नामक ब्राह्मण को त्रास देने पर उस ब्राह्मण ने उसे शाप दिया। वृद्धावस्था में कमंद को अपने कृत्यों पर पश्चाताप हुआ और उसने प्रायश्चित करना चाहा, तो ब्राह्मणों ने उस के लिए कोई भी अनुष्ठान करने से मना कर दिया। तब कमंद ने अपने संचित धन एक जीर्णशीर्ण गणेशमंदिर के पुनरुद्धार में लगा दिया। भृगु के उपदेश से राजा की इस जन्म की नास्तिकबुद्धि विगलित हो जाती है, और भृगु उसके समक्ष गणेश के एक सौ आठ नामों का उच्चारण करते हैं।

भृगु यह भी बताते हैं कि किस प्रकार व्यास ऋषि को भी गणेश के संबंध में भ्रांति हो गयी थी और ब्रह्मा ने उन्हें गणेशमंत्र का उपदेश दिया तब उनका बुद्धिभ्रम दूर हुआ। गणेश के बिना ब्रह्मा भी सृष्टि नहीं कर सकते अत: सृष्टि करने में समर्थ हो सकने के लिए वे गणेश की स्तुति करते हैं (*गपु.,* उपासना अ. 13)। अहल्या के साथ रति के कारण इंद्र को शाप मिलता है, तब वे गणेश की अर्चना के लिए षडक्षरगणेशमंत्र का जाप करते हैं और शाप से मुक्त होते हैं। शंकर त्रिपुरासुर से पराजित हो जाते हैं, तब गजानन के दर्शन उन्हें होते हैं और गणेशसहस्रनाम का जाप करने के पश्चात् त्रिपुर से पुन: युद्ध कर के वे विजयी होते हैं। गणेश के अवतारों में मयूरेश भी एक अवतार हैं, परशुराम गणेश का इसी अवतार में दर्शन पाते हैं, जिससे उन्हें परशु की प्राप्ति होती है (अ. 82) जब शंकर कामदेव को भस्म करते हैं, तो वह गणेश की आराधना करता है और उनके प्रभाव से पुनर्जन्म प्राप्त करता है। गणेश की सत्ययुग, त्रेता व द्वापर— तीन युगों की लीलाओं का वर्णन इस पुराण में किया गया है। शंकर स्वयं पार्वती को गणेशोपासना का उपदेश देते हैं। (अ. 50) गणेश की पुत्ररूप में प्राप्ति भी पार्वती को गणेशोपासना से ही होती है। बच्चा असुर का रूप धारण कर के सताता है इस बालासुर का गणेश वध करते हैं। क्रीड़ाखण्ड के अ. 92 में गणेश के जमुहाई लेने पर पार्वती इनके मुख में निखिल ब्रह्मांड के दर्शन करती हैं।

कल्किपुराण

कल्किपुराण भागवत से प्रभावित हो कर लिखा गया है। इसी पुष्पिका में इसे अनुभागवत बताया गया है। इसमें तीन अंश हैं, प्रथम तथा द्वितीय अंशों में सात-सात तथा तृतीय अंश में इक्कीस अध्याय हैं। वैष्णवभक्तिधारा का उस पर गहरा प्रभाव है। इस पुराण में भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार का वर्णन है। प्रथम अंश में सूत व सौनकादि के संवाद से पुराण का प्रारम्भ होता है, सूत बताते हैं कि किस प्रकार नारद के प्रश्न करने पर ब्रह्मा ने इस पुराण का आख्यान किया। द्वितीय अध्याय में देवता कलियुग के विकारों से त्रस्त हो कर ब्रह्मा के साथ विष्णु के पास जाते हैं। इस प्रसंग में कलियुग की विकृतियों का बड़ा प्रभावशाली वर्णन किया गया है । कलियुग तथा उसके सहायकों के प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन वीभत्स रस की निष्पत्ति कराता है[24] तथा कलियुग में लोगों की दुष्प्रवृत्तियों का चित्रण भी

---

[24] प्रलयांते जगत् सृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः। ससर्ज घोरं मलिनं पृष्ठदेशात् स्वपातकम्। स चाधर्म इति ख्यातस्तस्यवंशानुकीर्तनात्। श्रवणात् स्मरणाल्लोकः सर्वपापैः प्रमुच्यते। अधर्मस्य प्रिया रम्या मिथ्या मार्जारलोचना। तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भः परमकोपनः। स मायायां भगिन्यां तु लोभं पुत्रञ्च कन्यकाम्। निकृतिं जनयामास तयोः क्रोधः सुतोऽभवत्। स हिंसायां भगिन्यां तु जनयामास *तं कलिम्। वामहस्तधृतोपस्थं तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम्। काकोदरं करालास्यं लोलजिह्वं हीनयानकम्। पूतिगंध द्यूतमत्स्यस्त्रीसुवर्णकृताश्रयम्।। कल्किपुराण, 1.1.14-19.*

भयावह यथार्थ को उद्घाटित करता है।[25]

विष्णु कहते हैं कि वे राजा विष्णुयशस् के पुत्र के रूप में जन्म ले कर कल्कि का अवतार लेंगे। तथा लक्ष्मी सिंह नरेश की पुत्री पद्मा का अवतार ग्रहण करेंगी। आगे के अध्यायों में कल्कि का विद्याध्ययन, जामदग्न्य से धनुर्वेद की शिक्षा लेना, बिल्वोदकेश्वर में जाकर उनका शिव की स्तुति करना, धर्मप्रवचन आदि विषय वर्णित हैं। चतुर्थ अध्याय में सिंहल द्वीप का मनोहारी वर्णन है, और वहाँ राजकुमारी पद्मा के जन्म व बाल्य का भी सुंदर चित्रण है। पंचम अध्याय में पद्मा के स्वयंवर का प्रसंग बड़ा रोचक है, जिसमें उसके रूप पर मोहित हो कर सारे के सारे स्वयंवरार्थी राजा स्त्री बन जाते हैं। पद्मा विलाप करती है कि जो उसे देखता है, वही मुग्ध हो कर स्त्री बन जाता है, इस तरह तो वह आजीवन अविवाहित ही रह जाएगी।

द्वितीय अंश के प्रथम अध्याय में कल्कि का संदेशहर शुक पद्मा के पास आता है। पद्मा और शुक के संवाद में कल्कि और पद्मा के बीच प्रणय का आरम्भ तो होता ही है, शुक के आग्रह पर पद्मा विष्णुपूजन की विधि विस्तार से बताती हैं। इसके आगे कल्कि और पद्मा का विवाह तथा शम्भलपुर में उनके निवास का विशद वर्णन है। कल्कि व पद्मा के जय तथा विजय— ये दो पुत्र उत्पन्न होते हैं। कल्कि अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करते हैं। सातवें अध्याय में कीकट नगर पहुँच कर बौद्धों से कल्कि के युद्ध का रोमांचक चित्रण है, जिसमें कल्कि बौद्धों का संहार करते हैं। जिनका वध हो जाने पर उसके भाई शुद्धौदन कल्कि से युद्ध करते हैं। तृतीय अंश के पहले अध्याय में म्लेच्छ स्त्रियों से उनके युद्ध का वर्णन है। आगे के अध्यायों में रामोपाख्यान तथा सूर्यवंश और चंद्रवंश के राजाओं के वृत्तांत हैं।

कल्किपुराण में सौंदर्य के वर्णन तथा श्रृंगार के प्रसंग सरस तथा संस्कृत की अलंकृत कविता सुंदर के नमूने हैं। शिव तथा गंगा के भक्तिभाव से परिपूर्ण स्तोत्र भी इसमें यथाप्रसंग निवेशित हैं। सिंहल द्वीप, वहाँ की कारुमती पुरी, शम्भल नगर आदि के वर्णन भी रोचक हैं। द्वितीय अंश के चतुर्थ अध्याय में अनंत मुनि के वृत्तांत में पुरिका (पुरी?) नगरी का वर्णन है। इस पुराण का पूरा स्वरूप महाकाव्यात्मक ही है।

सांबपुराण

उपपुराणों में *साम्बपुराण* का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका रचना 550 से 650 ई. के बीच हुई ऐसा माना जाता है।[26] यह वस्तुतः *सौरपुराण* है। सूर्य की उपासना व माहात्म्य का इसमें विशेष वर्णन है। इस पुराण में सूर्य को सृष्टि का केंद्र तथा परात्पर तत्त्व निरूपित किया गया है। सूर्य के नाम, सूर्यरश्मियों के प्रकार, वायुमण्डल से उनका संबंध, उनके द्वारा आरोग्यप्राप्ति आदि का सूर्य की तेजस्विता के अनुरूप भाषाशैली में स्फीत और ओजस्वी पदावली में वर्णन यह पुराण प्रस्तुत करता है।

जाम्बवतीपुत्र सांब इस पुराण के श्रोता हैं, उन्होंने नारद तथा वसिष्ठ से सूर्योपासना की विधि का उपदेश ग्रहण किया। इस पुराण में चौरासी अध्याय हैं। मगद्विजानयन तथा मगमाहात्म्य शीर्षक 26-27वें अध्याय समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। सूर्य की प्रतिमा, ध्वजारोपण, देवयात्रा तथा रथयात्रा का वर्णन 29वें से 35वें अध्यायों में किया गया है। 36वें अध्याय से 68वें अध्याय तक सांबदीक्षा तथा पूजाविधि का विस्तार से वर्णन है, शेष अद्यायों में आगमसम्मत मोक्ष व अध्यात्म की चर्चा है। 57वें अध्याय से 82वें अध्याय तक का अंश शैवागमों से सम्बद्ध है, जिसमें शिव महेश्वर का निरूपण किया गया है।

---

[25] वही : 1.1.25-39.

[26] *उपपुराणदिग्दर्शन* :11.

देवीपुराण

देवीपुराण शाक्तपरम्परा का महत्त्वपूर्ण संप्रदायग्रंथ है। यह *देवीभागवत* पुराण से अलग है। इसमें 128 अध्याय हैं। सिंहवाहिनी दुर्गा की उत्पत्ति, विविध लीलाओं तथा महिषासुरमर्दन का वर्णन विशेष है। देवी की प्रतिमा के लक्षण व निर्माण की विधि, शाक्तपूजा के विविध विधान, नगरनिवेश, दुर्गविधान, आयुर्वेद, विविध तीर्थ व नगरों का भी वर्णन इसमें मिलता है। भौगोलिक दृष्टि से यह बंगाल व असम से विशेष संबंधित है। धर्मशास्त्र के ग्रंथों पर इसका प्रचुर प्रभाव है। कहीं-कहीं इसमें गद्य का प्रयोग भी किया गया है। बौद्धों के अवदान साहित्य की तरह इस पुराण में अनेकत्र संकर (हाइब्रीड) संस्कृत प्रयुक्त है, अपाणिनीय प्रयोगों की भी भरमार है, जो व्याकरण के नियमों की अवहेलना से नहीं, अपितु व्याकरणज्ञान के अभाव से जनित है।

नगरों और तीर्थों के पुराण

नीलमतपुराण— इस पुराण का नामोल्लेख उपपुराणों में नहीं मिलता। वेदकुमारी घई के अनुसार इसका रचनाकाल छठी-सातवीं शताब्दी ई. के आसपास है।[27] काश्मीर के प्राचीन इतिहास, भूगोल व संस्कृति के परिचय की दृष्टि से यह पुराण महत्त्वपूर्ण है। राजतरंगिणीकार कल्हण ने इस पुराण का अपने इतिहास लेखन में खूब उपयोग किया है। इसका आरम्भ जन्मेजय तथा वैशम्पायन के संवाद से होता है। जन्मेजय प्रश्न करते हैं कि *महाभारत* के महासंग्राम में काश्मीर के राजाओं ने भाग क्यों नहीं लिया? वैशम्पायन बताते हैं कि कश्मीर के राजा गोनंद जो जरासंध के नातेदार थे, उन्हें जरासंध ने यादवों के विरुद्ध संग्राम में सहयोग करने के लिए आमंत्रित किया था। बलराम ने उनका वध किया। अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए गोनंद के पुत्र दामोदर ने कृष्ण से युद्ध किया, कृष्ण ने दामोदर का भी संहार कर दिया, किंतु काश्मीर की महिमा का विचार कर के उसकी गर्भवती रानी यशोवती का राज्याभिषेक करा दिया। रानी यशोवती का पुत्र *महाभारत* संग्राम के समय बालक ही था, अत: उसने इस संग्राम में भाग नहीं लिया।

इसके पश्चात् वैशम्पायन गोनंद तथा बृहदश्व के संवाद का वर्णन करते हैं, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति के प्रसंग में जलोद्भव दैत्य का जन्म, विष्णु के द्वारा शिव की सहायता से उसका संहार तथा नागों के काश्मीर में आकर बसने की कथाएँ हैं। नागों के आद्य सम्राट् नील हुए, जिनके उपदेशों का उस पुराण में विस्तार से वर्णन है।

नाग, खस आदि जनजातियों तथा नागवंशीय राजाओं का वर्णन इस पुराण में मिलता है।

बृहद्विष्णुपुराण— यह पुराण मूलत: प्राप्त नहीं होता। निर्णयसिंधु, धर्मसिंधु, भगवंत भास्कर, चतुर्वर्गचिंतामणि आदि धर्मशास्त्रीयग्रंथों में विभिन्न धर्माचार या व्यवहार के प्रकरणों के निर्णय के लिए प्रमाणस्वरूप इस पुराण के श्लोक उद्धृत किये गये हैं। इस पुराण का एक अंश *मिथिलामाहात्म्य* में उपलब्ध है। *मिथिलामाहात्म्य* में सीता और राम को परमतत्त्व के रूप में स्थापित किया गया है। तुलसी के *रामचरितमानस* में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। भावुक की अवधारणा भक्तिकाव्य में नवीन है।

सीतारामात्मकं सर्वं सर्वकारणकारणम् ।
अनयोरेकतातत्त्वं गुणतो रूपतोऽपि च॥
तत्पदं राम इत्युक्तं जानकी भावरूपिणी।
तयोरैक्यं भवेत् तत्त्वमिति वेदविदो विदु:॥
तत्त्वतो मन्त्रतो वापि रूपतो गुणतोऽपि वा।
न पृथग् भावना यस्य स ज्ञेयो भावुकोत्तम:॥ (*मिथिलामाहात्म्य,* 3-5)

---

[27] *नीलमतपुराण— ए कल्चरल ऐंड लिटरेरी स्टडी,* वेदकुमारी घई, श्रीनगर, जम्मू, 1968 द्वि. (सं.) : 1988.

(सं. धर्मनाथ झा, का.सिं.दरभंगा सं.वि.वि., दरभंगा, 2013, पृ. 1)
रामान्न मैथिली भिन्ना मैथिल्या न रघूत्तमः।
द्वयोरैक्यं विजानीयात् तत्त्वतो नैव रूपतः॥
द्वयोर्नित्यं द्विधा रूपं तत्त्वतो नित्यमेकता।
राममन्त्रे स्थिता सीता सीतामन्त्रे रघूत्तमः॥
यतो वर्णात्मको रामः सीतामात्रास्थिता भवेत्।
यद्वा शब्दात्मको रामः सीता शब्दार्थरूपिणी॥ (वही 7-9)

साथ ही वैष्णव भक्ति की परम्परा का अनुवर्तन करते हुए नित्यमंगलरूपिणी अयोध्या व मिथिलापुरियों तथा राम के पार्षदों आदि की भी परिकल्पना की गयी है—

नित्यानन्दरसास्वादरूपिणो रामपार्षदाः
श्रीरामाराधकानां च निरासार्थं विशेषतः॥15
निष्कलं निष्प्रतिद्वन्द्वं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सत्तामात्रं परं ब्रह्म सदसत्परमेव यत्॥ 24
तद्व्यापकस्य रूपस्य निर्गुणस्य परात्मनः।
प्रभावात् कारणं राम इति नारदसम्मतिः॥ 26
तच्छक्तिर्जानकीरूपा तेनाभिन्ना महामुने।
सूक्ष्ममज्ञानसर्वस्वमिति ज्ञात्वा विमुच्यते॥ 27

मिथिलामाहात्म्य में तीरभुक्ति जनपद, गण्डकी आदि अनेक नदियों, मिथिला के तीर्थस्थलों का वर्णन है। मिथिला के सरोवरों तथा कूपों का भी वर्णन इसमें है।

कालिकापुराण— *कालिकापुराण* की रचना दसवीं शती के आसपास असम में की गयी। कामाख्या देवी का वर्णन तथा पृथ्वी के पुत्र नरकासुर की कथा इसमें विस्तार से निरूपित है। जावा व मलय द्वीपों में नरकासुर की कथा के प्रसार का मूल भी यही प्रतीत होता है। शाक्तदर्शन, महामाया या त्रिपुरासुंदरी के स्वरूप के विवेचन की दृष्टि से यह पुराण अध्येतव्य है। पार्वती के तपोवर्णन जैसे प्रसंगों में पुराणकार कालिदास से प्रभावित हैं। नैसर्गिक सुषमा को मनोहारी चित्रण अनेकत्र इस पुराण में मिलता है। वर्षावर्णन में पुराणकार कहते हैं—

स्निग्धनीलाभ्नश्याममुदिरौघस्य पृष्ठतः।
बलाकाराजिर्भात्युच्चैर्यमुनाघुष्टफेनवत्॥
(काले अंजन की तरह श्याम मेघों के ऊपर शुभ्र बलाकाओं की पाँत यमुना के पीसे हुए फेन की तरह लगती है।)

इसमें बादल के लिए मुदिर शब्द का प्रयोग कवि के अप्रचलित शब्दों के ज्ञान का प्रमाण है।

सरस्वतीपुराण— इस पुराण में 18 सर्गों तथा 2890 पद्यों में सरस्वती नदी के तट पर निर्मित तीर्थों का विशेष वर्णन है। साथ ही इसमें पाटण के राजा सिद्धराज जयसिंह (1093-1143) के द्वारा निर्मित सहस्रलिंग सरोवर का वर्णन भी किया गया है। सरस्वती नदी के हिमालय से निकल कर कुरुक्षेत्र के आसपास बहने और विनशन क्षेत्र में विलीन होने का वृत्तांत बताने के पश्चात् पुराण में सरस्वती नदी का गुजरात के आरासुर पहाड़ियों के निकट पुनः प्रादुर्भाव वर्णित है। पुराण की मान्यता है कि सिद्धराज के द्वारा निर्मित सहस्रलिंग सरोवर में सरस्वती की धारा मिलती है।

अपने अपने कुटुंब-कबीलों के पुराण

कालिकापुराण नाम से ही एक अन्य उपपुराण या स्थलपुराण मिलता है, जिसका संबंध कांस्यकार या कसेरों के समाज के लोगों से विशेष है। यह पुराण *पद्मपुराण* से सम्बद्ध है। इसी प्रकार *भार्गवपुराण* का संबंध भृगु ऋषि के वंशजों से है। *कंडुलपुराण* का संबंध कुण्डलिया ब्राह्मणों तथा सोरठिया वैश्यों से है। *लिम्बजपुराण* का संबंध नापित (नाई) जाति से है। इसमें दमन नामक भील की कथा रोचक

है। ऐसे पुराणों को ज्ञातिपुराण की संज्ञा दी गयी है।

मल्लपुराण एक ज्ञातिपुराण तथा तीर्थपुराण भी है। इसमें भी मोठेरा के मोढ़ ब्राह्मणों का वृत्तांत है। गुजरात के इतिहास की भी कतिपय घटनाएँ इसमें निरूपित हैं।

श्रीमालपुराण में श्रीमाली ब्राह्मणों तथा ओसवाल, पोरवाल आदि वणिक् लोगों का इतिहास है। राजस्थान के भिन्नमाल नगर का इसमें विशद वर्णन है, जिसका प्राचीन नाम श्रीमाल रहा है। इस पुराण को *स्कंदपुराण* के ब्रह्मखण्ड का अंग बताया गया है, पर यह *स्कंदपुराण* में नहीं मिलता। इसमें 81,000 श्लोक तथा 75 अध्याय हैं। श्रीमालनगर के सामाजिक आर्थिक धार्मिक जीवन के विविध पक्ष इस पुराण में प्रकाशित हुए हैं। इसी प्रकार साचीहरोपाख्यान में सचोरा ब्राह्मणों का वृत्तांत है जिनका संबंध राजस्थान के साचोर से रहा है। *बाल्यखिल्यपुराण* का संबंध राजस्थान के झालोर नगर से तथा झालोरा ब्राह्मणों से है।

धर्मारण्यपुराण पद्मपुराण के पातालखण्ड के अंतर्गत विरचित बताया गया है। पर *पद्मपुराण* में यह नहीं मिलता। *स्कंदपुराण* में धर्मारण्यमाहात्म्य का प्रकरण है। यह एक ज्ञातिपुराण भी है और तीर्थपुराण भी। इसमें 69 अध्यायों में गुजरात के मोढ़ेरा के निवासी मोढ़ जाति के ब्राह्मणों की वंशावली तथा विवरण दिये गये हैं। मोढ़ ब्राह्मणों के चौबीस गोत्रों का परिचय देते हुए पुराणकार में मोढ़ेरा में रहने वाले वणिक् जाति के लोगों का वृत्तांत भी इसमें दिया है।

कोट्यकलपुराण का अन्य नाम कोट्यकलमाहात्म्य भी है। इसमें 24 अध्याय तथा 816 पद्य हैं।

तिरुपति के श्रीवेंकटेशमंदिर व तत्संबंधी तीर्थों का वर्णन *वेंकटेशपुराण* में मिलता है।

पुराणों में भारतदेश

हमारे देश का नाम भारतवर्ष कैसे हुआ इसका विवेचन प्राचीन इतिहास के उद्घाटन के साथ पुराणों में किया गया है। तदनुसार महाराज नाभि के पुत्र ऋषभदेव थे। ऋषभदेव के पुत्र भरत हुए। उन्होंने पिता के आदेश से इस देश की धरती पर शासन किया, इनके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ।

ततश्च भारतवर्षमतल्लोकेषु गीयते।
भरताय यत: पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्॥ (*विष्णुपुराण,* 2.1.32)

वायुपुराण में भी इसका समर्थन किया गया है।

हिमाह्वयं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात् तद् भारतं वर्षं नाम्ना विदुर्बुधा:॥ (*वायुपुराण* 33.42)

भविष्य पुराण में उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रक्षिप्त अंश जुड़ते रहे हैं। महारानी विक्टोरिया को यहाँ विकटावती कहा गया है। इस पुराण में भारतवर्ष का इतिहास भविष्यवाणियों द्वारा निरूपित है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास का यह एक अच्छा स्रोत है। इसमें वर्णित पृथ्वीराज, मोहम्मद गोरी तथा आल्हा का वृत्तांत *पृथ्वीराजरासो, परमालरारासो* आदि काव्यों की अपेक्षा ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्रामाणिक है।

यद्यपि पुराणों में सप्तद्वीपा वसुंधरा के स्वरूप व विभिन्न स्थलों का वर्णन किया गया है, परन्तु भारतवर्ष के इतिहास व भूगोल का निरूपण मार्कण्डेय, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में अधिक विशद रूप से प्राप्त होता है। पुराणकार बार-बार यह बताते चलते हैं कि हमारा देश भारतवर्ष है, इसके सभी निवासी भारतीय हैं। सभी भारतीय अपने देश पर गौरव करें, और अपने देश के इतिहास तथा संस्कृति

को जानें यह भी उनका संदेश है। भारतवर्ष की स्वरूप बताते हुए वे कहते हैं—

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती तत्र सन्ततिः ॥

यह श्लोक अनेक पुराणों में दोहराया गया है। साथ ही भारतवर्ष को जम्बूद्वीप में श्रेष्ठ बताया गया है। पुराणकार कहते हैं कि सारी धरती पर इस देश में रहना स्पृहणीय है क्यों कि यह कर्मभूमि है, यहाँ रह कर स्वर्ग तथा अपवर्ग दोनों पाए जा सकते हैं। *विष्णुपुराण* में कहा है—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ॥

पद्मपुराण भी यही कहता है—

सर्वेषामेव भूतानां प्रियं भारतमुत्तमम्।

यह भारतवर्ष महापुरुषों की जन्मभूमि है। ईश्वर ने बार-बार इस पर अवतार लिया है। इसलिए यह स्वर्ग से भी बढ़ कर है। *विष्णुपुराण* में कहा गया है कि देवता भी भारतभूमि के गौरव की गाथा गाते रहते हैं तथा भारतवर्ष में जन्म लेने के लिए लालायित रहते हैं। वे यह कहते हैं कि भारत भूमि में रह कर स्वर्ग और अपवर्ग (मुक्ति) दोनों पाए जा सकते हैं।

गायंति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते
भवंति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार इस पवित्र भारतभूमि पर एक क्षण के लिए निवास अन्य किसी स्थान पर कई कल्प निवास से भी बढ़ कर है—

कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥

समस्त पुराणसाहित्य भारतवर्ष का माहात्म्यगायन है।

इसके साथ ही इस भारत देश की सारे जंबू द्वीप में श्रेष्ठता बताते हुए कहा गया है— 'अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।'

पुराणों में इतिहास

पुराणों में मनु से ले कर *महाभारत* काल के परीक्षित तक का इतिहास तथा वंशावलियाँ वर्णित हैं। यह इतिहास प्रागैतिहासिक काल का है, तथा आधुनिक इतिहासकारों ने इसका निरूपण प्रायः नहीं किया है। तथापि पुरातात्त्विक साक्ष्यों से पुराणप्रतिपादित प्राचीन इतिहास की पुष्टि होती है। पार्जिटर ने पुराणों की वंशावलियों पर गम्भीर अनुसंधान करते हुए अपने *ग्रंथ एंश्येट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन* में स्वीकार किया है कि पुराणप्रतिपादित वंशावलियाँ प्रामाणिक हैं।

अग्निपुराण में अठारहवें अध्याय में स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन है। अन्य पुराणों में भी स्वायम्भुव, वैवस्वत आदि मनुओं की वंशावलियाँ निरूपित हैं। *श्रीमद्भागवत* आदि पुराणों में मनु से लगा कर मौर्यवंश तक के राजाओं का निरूपण है। भागवत में नवम स्कंध के पहले अध्याय से तेरहवें अध्याय तक सूर्यवंशीय राजा वर्णित हैं। तत्पश्चात् इसी स्कंध में चौदहवें से बीसवें अध्याय तक चंद्रवंश की परम्परा कही गयी है। इक्कीसवें अध्याय से चौबीसवें तक में भरतवंश, दिवोदास आदि के वंश और अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु, यदु आदि के वंश वर्णित हैं। अंतिम बारहवें स्कंध में कलियुग के राजाओं का वर्णन भविष्य कथन की शैली में किया गया है।

ब्रह्माण्डपुराण के द्वितीय अंश में भारतवर्णन है इसके अंतर्गत भरत के शासन का वर्णन किया

गया है। चतुर्थ अंश में सूर्यवंशीय तथा चंद्रवंशीय राजाओं के चरित निरूपित हैं। इसी अंश में मगध नगर का वर्णन कर के पुराणकार ने नंदवंशीय राजाओं का विवरण दिया है, तथा कल्कि अवतार की भविष्यवाणी की है। शिशुनाग वंश के राजाओं में काकवर्ण, क्षेमधर्मा, बिम्बिसार, अजातशत्रु, दर्शक, उदायी, नंदवर्धन और महानंदी के नाम गिनाए गये हैं। नंदवंश में महापद्म नंद के आठ पुत्रों का विनाश कर के चंद्रगुप्त को सिंहासन पर बिठाने का वृत्तांत भागवत, वायु आदि पुराणों में भविष्य कथन की रीति से बताया गया है। *वायुपुराण* में कहा है—

उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो द्विरष्टभिः।
भुक्त्वा महीं वर्षशतं नंदेंदुः स भविष्यति॥ (वायु पु. 99.330-31)

भागवत में कहा है— भाव्य बार्हद्रथ को मार कर उसका अमात्य प्रद्योत को राजपद पर नियोजित करेगा, प्रद्योत का पुत्र पालक होगा, पालक का विशाखयूप, उसका राजक, राजक का नंदिवर्धन ये पाँच राजा एक सौ अड़तीस साल राज्य करेंगे— 'अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यंति पृथिवीं नृपाः' (12.1.4)। तत्पश्चात् शिशुनाग, काकवर्ण, क्षेमधर्मा, क्षेमधर्मा का बिधिसार (बिंदुसार), बिंदुसार का अजातशत्रुः, उसका पुत्र दर्भकः (दर्शक) , दर्शकस्य का अजय, अजय का नंदिवर्धन, नंदिवर्धन का महानंदी— शिशुनाग वंश के ये दस राजा एक सौ साठ वर्ष राज्य करेंगे (12.1.5-7)। महानंदी की शूद्रपत्नी से महापद्मपति उत्पन्न होगा, उसके वंशजों में महापद्म परमप्रतापी द्वितीय भार्गव के समान होगा, उसके सुमाली आदि आठ पुत्र होंगे। इन नव नंदों को कोई ब्राह्मण जड़ से उखाड़ फेंकेगा— 'नवनंदान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति' (12.1.12)। इसके पश्चात् मौर्यवंश का शासन आरम्भ होगा। इस वंश में चंद्रगुप्त मौर्य का पुत्र वारिवार, वारिवार का अशोकवर्धन, अशोक का सुयश, सुयश का संगत, संगत का शालिशूक, शालिशूक का सोमशर्मा, सोमशर्मा का शतधन्वा— ये दस मौर्यवंशीय राजा एक सौ सैंतीस वर्ष राज्य करेंगे (12.1.15)। बृहद्रथ मौर्य को उसी का सेनापति पुष्यमित्र मार डालेगा, उसके पश्चात् शुंग वंश का शासन आरम्भ होगा। पुष्यमित्र शुंग का पुत्र अग्निमित्र होगा, अग्निमित्र का सुज्येष्ठ— इस क्रम से दस शुंग राजा सौ से अधिक वर्ष तक राज्य करेंगे। 'भोक्ष्यंति भूमिं वर्षशताधिकम्' (12.1.18)। स्वेच्छाचारी देवहूति शुंग को उसी का अमात्य कण्व समाप्त कर देगा। शुंगवंश की समाप्ति के साथ कण्व वंश आरम्भ होगा। एक सौ पैंतालीस वर्ष काण्वायन राजा राज्य करेंगे। काण्व राजा सुशर्मा को उसी का भृत्य बली वृषल मार डालेगा, तब आंध्र वंश प्रवर्तित होगा। भागवत में आंध्रवंश के तीस राजाओं के नाम यहाँ गिनाए गये हैं तथा उनके चार सौ छप्पन वर्ष राज्य करने का उल्लेख किया है। फिर बताया है कि तत्पश्चात् सात आभीरवंशीय और दस गर्दभवंशीय राजा होंगे और फिर यवनों तथा तुरुष्कों (तुर्कों) का राज्य होगा। भागवत में बाह्लीक, कोसल, निषध तथा मागध राजाओं का भी वर्णन है।

पार्जीटर ने भारत के प्राचीन इतिहास के ज्ञान के लिए पुराणों की उपादेयता स्वीकार की है। अल्तेकर का मानना है कि जिस प्रकार पुराणों में वर्णित आंध्र, मौर्य, शिशुनाग आदि राजवंशों का इतिहास प्रामाणिक है, उसी प्रकार मनु से लगा कर *महाभारत* युद्ध का जो इतिहास उनमें बताया गया है उसकी भी प्रामाणिकता स्वीकार की जानी चाहिए।

प्रत्येक पुराण में भारतीय इतिहास के किसी न किसी विशेष पक्ष का निरूपण है। *श्रीमद्भागवत* तथा *विष्णुपुराण* में मौर्यवंशीय राजाओं का 326 ई.पू. से लगा कर 180 ई.पू. तक का इतिहास विशेष रूप से वर्णित है। *मत्स्यपुराण* में आंध्रवंशीय राजाओं का 225 ई. से आरम्भ होने वाला इतिहास विशेष वर्णित है, तो *वायुपुराण* में गुप्तवंश का वर्णन है।

पुराणों में क्षेत्रीय इतिहास तथा स्थलविशेषवर्णन

स्कंदपुराण भारत के तीर्थों, विभिन्न स्थलों के वर्णन की दृष्टि से एक विश्वकोश ही है। इस पुराण के अवंतीखण्ड (रेवाखण्ड) में नर्मदातटवर्ती प्रदेशों, मंदिरों व तीर्थस्थानों व उनसे संबंधित आख्यानों का विपुल संग्रह किया गया है, काशीखण्ड में वाराणसी के विविध तीर्थों, नदियों, तथा स्थलविशेषों का सूक्ष्म व विशद निरूपण है। *ब्रह्मपुराण* में उत्कल (ओडीशा) के इतिहास व तीर्थस्थल वर्णित हैं। जगन्नाथस्वामी के मंदिर का इतिहास व जगन्नाथ प्रतिमा लाए जाने का प्रकरण इसमें बताया गया है।

कतिपय पुराणों में विविध धार्मिक या दार्शनिक सम्प्रदायों की उत्पत्ति व विकास का प्रामाणिक विवेचन है। भागवतपुराण के तृतीय स्कंध में तेईसवें तथा चौबीसवें अध्यायों में कपिल मुनि का जन्म व जीवनचरित वर्णित है, तथा सांख्य सिद्धांत उन्हीं के शब्दों में समझाया गया है। चतुर्थ स्कंध के प्रथम अध्याय में कश्यप, अत्रि, दुर्वासा आदि ऋषियों की वंशपरम्परा बताई गयी है। *ब्रह्माण्ड पुराण* के चतुर्थ अंश में जैन और बौद्ध धर्मों का आविर्भाव वर्णित है। पुराणों में भुवनकोश नाम से एक विषय परवर्ती काल में प्रमुख रूप से समाहित किया गया। भुवनकोश वास्तव में भारतवर्ष का भौगोलिक इतिहास है। पुराणों में भुवनकोशवर्णन को इतना महत्त्व दिया जाने लगा कि आगे चल कर पुराण के पंच लक्षणों में वंशानुचरित के स्थान पर भुवनकोश को सम्मिलित कर लिया गया। *श्रीमद्भागवत, अग्निपुराण, वराहपुराण* तथा अन्य पुराणों में भुवनकोश का प्रतिपादन है।

पुराणों की कविता

पुराणकारों ने अपने उपदेश व संदेश के प्रचार के लिए कविता के माध्यम का भरपूर आश्रय लिया। वस्तुतः समस्त अठारह पुराण उत्कृष्ट कविता के एक से एक बढ़ कर निदर्शन भरे पड़े हैं। काव्यशास्त्रियों ने पुराणों को अपने लिए एक अवलंबन के रूप में स्वीकार किया। कविता के विरोधियों को उत्तर देने के लिए *विष्णुपुराण* का यह कथन उद्धृत किया गया—

काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च।
शब्दमूतिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः॥

(जितने भी काव्यपाठ के प्रकार हैं, या सब प्रकार के गीत हैं, वे शब्द की मूर्ति धारण करने वाले महात्मा विष्णु के अंश हैं।)

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने इसे उद्धृत किया है।

श्रीमद्भागवत तो काव्यकला व भावसौंदर्य की पराकाष्ठा ही है। वस्तुतः यह कवियों के लिए उपजीव्य व पथप्रदर्शक महत्तम काव्यों में एक है। *विष्णुपुराण* में लीला का जो सरस वर्णन किया गया है, वह न केवल भाविक अलंकार का उत्तम उदाहरण है, लीलानाट्य का स्वरूप व सौंदर्यबोध भी उससे समझा जा सकता है। मम्मट जैसे काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य ने *विष्णुपुराण* का यह प्रसंग उद्धृत किया है —

तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका।
तच्चिन्ताविपुलाह्लादक्षीणपुण्यचया तथा॥
चिंतयंती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरुपिणम्।
निरुच्छवासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका॥ (*विष्णुपुराण* 5.13.21–22)[28]

इस युग्मक को काव्यप्रकाशकार मम्मट ने पदप्रकाश्यध्वनि के उदाहरण में उद्धृत करते हुए इसमें व्यंजना के उत्कष्ट सौंदर्य का विवेचन किया है।

गोपियों के द्वारा कृष्णलीला तथा उसमें तन्मयीभवन का जैसा चित्रण *विष्णुपुराण* ने किया है, वह जयदेव के *गीतगोविंद* तथा समस्त कृष्णभक्तिकाव्य का बीज है। इस प्रकार के वर्णन पुराणों के भारतीय नाट्यपरम्परा विशेषतः लीला के रंगमंच से घनिष्ठ संबंध को भी सूचित करते हैं।

---

[28] (सं.) थानेशचंद्र उप्रेती, परिमल, दिल्ली, खण्ड – 2, 1987 : 16.

पुराणों का महत्त्व

पुराण धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक दृष्टि से भारतीय साहित्य की अनमोल निधि हैं। इनमें तीर्थों, प्राचीन उत्सवों अनुष्ठानों, व्रतों आदि का जो विवरण मिलता है, परम्पराओं के विकास के ज्ञान के लिए उसका महत्त्व निर्विवाद है। पुराणों का भारतीय समाज के नवजागरण और जन-जन को शिक्षित और सुसंस्कृत बनाए रखने में महान् योगदान रहा है। धर्म, दर्शन, संस्कृति और विभिन्न कलाओं, शास्त्रों , विद्याओं के ज्ञान को पुराणों ने सरल और सुबोध बना कर इस रूप में प्रस्तुत किया कि वह सामान्य लोगों के लिए ग्राह्य हो सके। पुराणकार इस देश के भूगोल और इतिहास के विषय में लोगों को जानकारी देने का काम भी युग-युग तक करते रहे। भारतवर्ष का स्वरूप बताते हुए पुराणों ने जन जन के मन में देश के प्रति अनुराग जगाने का प्रयास किया है।

उनमें इस देश की सांस्कृतिक परम्पराओं के संबंध में जन जन को बोधित किया गया व देश-प्रेम का संदेश दिया गया।

पर्यावरण की रक्षा के लिए पुराण आज हमारे लिए प्रेरणा के अमिट स्रोत हैं। पुराणों में निरंतर वृक्षों और वनों के संवर्धन का संदेश दिया जाता रहा है। *भविष्यपुराण* में कहा गया है—

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥

(एक बावड़ी दस कुओं के बराबर है और तालाब दस बावड़ियों के बराबर। एक पुत्र दस तालाबों के बराबर है तथा एक पेड़ दस पुत्रों के बराबर।)[29]

वैज्ञानिक और दार्शनिक चिंतन को पुराणों ने अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। *श्रीमद्भागवत* में सारे ब्रह्माण्ड का स्वरूप और उसमें विभिन्न ग्रहों, नक्षत्रों की गति को समझाने के लिए कुम्हार के घूमते हुए चाक का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार कुम्हार का चाक घूम रहा हो और उस पर कुछ चीटियाँ चल रही हों, तो वे चीटियाँ अपनी गति से भी चलती हैं, और उस चाक के साथ भी घूमती हैं, उसी प्रकार यह सारा ब्रह्माण्ड एक कुम्हार के एक चाक की तरह घूम रहा है, और इसके साथ इसके अंतर्गत सारे ग्रह नक्षत्र भी घूम रहे हैं, और वे ग्रह आदि इसकी गति के साथ घूमने के अतिरिक्त अपनी अपनी गतियों से भी भ्रमण कर रहे हैं—'यथा कुलालचक्रेण सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रांतरे राश्यंतरे चोपलभ्यमानत्वात्।' (*भागवत,* पंचम स्कंध, 22/2)

पुराणों में काल को सृष्टि के मूल तत्त्वों में एक कहा गया है—

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।
स तो विशेषभुग् यस्तु स कालः परमो महान्॥ (*श्रीमद्भागवत,* 3.11.1)

यह वेद तथा *महाभारत* में प्रतिपादित काल की अवधारणा के सातत्य में है। *महाभारत* में कहा गया है—

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनञ्जय।
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया॥
(*महाभारत,* मौसलपर्व, पूना सं. 32,पृ. 6564)

(इस जगत् रूपी बीज का मूल काल ही है। काल ही स्वेच्छा से अपने में इस सब का लय कर लेता है।)

पुराणों ने धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बर और निरर्थक कर्मकाण्ड का निराकरण कर के धर्म के मानवीय स्वरूप को प्रतिष्ठित किया। वे मानवतावादी धर्म के सबसे प्राचीन प्रतिपादक महाग्रंथ कहे जा सकते हैं। समाज में व्याप्त शोषण व अन्याय का प्रतिरोध पुराणकारों ने किया। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् सत्त्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ (*भागवत,* 3/30/29)

---

[29] विशेष विवरण के लिए इस पुस्तक *पेड़ों की दुनिया में* की भूमिका तथा अध्याय 1-3 देखें.

(जितने से अपना पेट भर सके, उतने पर ही प्राणी का अधिकार है। उससे अधिक जो संचय करता है, वह चोर है, और उसे दण्ड दिया जाना चाहिए।)

भागवत में कपिलमुनि कहते हैं—

अत्रैव स्वर्गो नरक इति मातः प्रचक्षते।
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥ (3.300.291-92)

(हे माता, इस धरती पर ही स्वर्ग है, इस धरती पर ही नरक है। जो नरक की यातनाएँ हैं, वे यहीं पर देखी जाती हैं।)

पुराणों ने धर्म के मानवीय रूप की प्रतिष्ठा की। उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड की रूढ़ियों को तोड़ कर तत्त्व का बोध कराया । हरिवंश में श्रीकृष्ण यज्ञ के स्वरूप को बताते हुए कहते हैं—

मंत्रयज्ञपरा विप्रा सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने ॥ (*हरिवंश,* 2/16/9)

(ब्राह्मण मंत्र से यज्ञ करते हैं, किसान सीता (हल की फाल) से और गोप पर्वत से यज्ञ करते हैं।)

इस प्रकार पुराणों ने नदीमहः, सागरमहः, वृक्षमहः जैसे उत्सवों की परम्परा का प्रवर्तन कर के समाज को पर्यावरण से जोड़ा।

भारतीय समाज को शिक्षित और सुसंस्कृत बनाने में कई शताब्दियों तक पुराणों ने जिस महती भूमिका का निर्वाह किया उसे दृष्टि में रख कर कहीं कहीं तो पुराणों को वेदों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया— वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने ॥ (*नारदीयपुराण*)। यही नहीं, पुराणों को वेद से भी अधिक प्राचीन कह दिया गया— *पद्मपुराण* कहता है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनंतरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥
(*पद्मपुराण*, सृष्टिखण्ड, अध्याय 104)

पुराणों का समाजदर्शन

जड़ भरत का प्रसंग *श्रीमद्भागवत* के पाँचवें स्कंध में आता है। अवधूत भरत 'जड़, उन्मत्त और बधिर की भाँति' विचरण कर रहे थे। एक बार वे एक पेड़ के नीचे बैठे हुए थे। पास से सिंधु देश का एक राजा रहूगण इक्षुमति नदी के किनारे से होते हुए निकला। वह शिविका (पालकी) पर आरूढ़ था। उसके शिविका भारवाहकों में से एक बीमार हो गया, तो राजसेवकों से कहा गया कि विष्टि (बेगार) के लिए कोई एक भारवाहक को ढूँढ़ो। राजा के सिपाही विष्टि के लिए किसी मज़दूर को ढूँढ रहे थे तो उन्होंने अवधूत भरत को ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे देखा। अवधूत भरत फक्कड़ थे, मैले कुचैले वेश में थे और कुछ मोटे-तगड़े भी थे। सिपाहियों ने समझा कि विष्टि के लिए एक अच्छा मज़दूर मिल गया। उन्होंने कहा कि चल उठ, राजा की पालकी ढोनी है। अवधूत भरत ने कि कहा कि अच्छा मैं चलता हूँ। उन्होंने पालकी के नीचे कंधा लगा दिया। वे तो स्वयं बड़े सम्राट् रहे थे, कभी पालकी ढोई नहीं थी, तो राजा की पालकी में बार-बार धचके लग रहे थे, क्योंकि उनसे पालकी सँभल नहीं रही थी। राजा ने चिढ़ कर मज़दूरों से पूछा कि तुम लोग ठीक से क्यों नहीं पालकी ढो रहे हो, मुझे बार-बार धचके क्यों लग रहे हैं? बाक़ी जो तीन बेगार करने वाले थे वे घबराए कि राजा उन्हें सजा दे देगा। तब उन्होंने राजा से कहा कि महाराज हमारी कोई ग़लती नहीं है, यह जो नया मज़दूर आया है इतना मोटा तगड़ा— यही धचके लगा रहा है। राजा ने अवधूत भरत से कहा कि देखने में तुम इतने मोटे तगड़े लग रहे हो और तुम से पालकी का इतना सा केवल एक कोना भी नहीं सँभल रहा है? बाक़ी तीन तरफ़ से तो ये लोग सँभाले ही हुए हैं। उस पर फिर अवधूत भरत ने राजा से जो कहा उसका हिंदी अनुवाद यह है — 'ऊपरी तौर से तुम्हारी यह बात सही है कि मैं बोझा ढो रहा हूँ, पर न तो मैं यह बोझा ढो रहा हूँ, न मैं रास्ते पर चल रहा हूँ, न मैं मोटा तगड़ा ही हूँ। स्थूलता, कृशता, व्याधियाँ, क्षुधा, तृषा, भय, वैर, जरा, इच्छा, भय, निद्रा, रति, क्रोध, अहंकार, मद और शोक इस देह में उत्पन्न होते हैं यह मेरे नहीं हैं।' (*श्रीमद्भागवत,* 5.10.9-10)

राजा चौंका। वह पालकी से उतरा और उनके पैरों में गिरकर कहा कि महाराज इन लोगों ने समझा नहीं कि आप कोई अवधूत हो सकते हैं। तो जो ग़लती हो गयी उसे क्षमा कर दीजिए और मुझे ब्रह्मविद्या का ज्ञान दे दीजिए। जैसे अवधूत भरत को कहा गया कि पालकी में कंधा लगा दीजिए तो उन्होंने कंधा लगा दिया, उसी तरह जब उनसे आग्रह किया गया कि ब्रह्मविद्या दे दीजिए तो उन्होंने राजा से कहा कि बैठ जा मैं तुझे सिखा देता हूँ और वे राजा को ब्रह्मविद्या सिखाने लगे। ब्रह्मविद्या के उपदेश के क्रम में उन्होंने राजा से एक बात कही जिसका शब्दश: अनुवाद यह है— 'हे राजा, धरती पर बाक़ी लोगों की तरह तू भी चल रहा है। तू राजा बाक़ी लोग मज़दूर यह कैसे? बाक़ी लोगों की तरह तेरे भी दो पैरों के ऊपर दो पिण्डलियाँ हैं, कमर, छाती, गर्दन और माथा है। फिर तू ही क्यों पालकी में चढ़ा हुआ है? इन लोगों के कंधों से यह पालकी ढुलवा रहा है और अपने आप को सौवीरराज कहलवा रहा है। तू अपने आपको सिंधु का राजा समझ कर मद से अंधा हुआ जा रहा है। इन कष्ट उठा रहे दीन हीन जनों को क्रूरता के साथ बेगार में लगाए हुए है फिर भी अपने आपको इन दीन हीन जनों का रक्षक बताकर डींग हाँकता है। जानकार लोगों के बीच तेरी यह ढिठाई शोभनीय नहीं है—

अंसेऽधि दार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते।
यस्मिन् भवान् रुढनिजाभिमानो राजास्मि सिंधुष्विति दुर्मदांध: ॥
जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्ट: ॥
(वही, 5.12.6–7)

भागवत पर प्रवचन करने वाले प्रवचनकार जनता को यह नहीं बताते कि अवधूत भरत ने सौवीरराज से इन शब्दों में यह बात कही थी। वे लोग यह भी नहीं बताते कि एक चतु:श्लोकी गीता भी है, जिसमें चार श्लोकों में कृष्ण ने यह कहा है कि बेटा होने से कोई नहीं तर जाता है। बेटा नरक में भी गिरा सकता है, लेकिन पेड़ जो लगाएगा वो ज़रूर तर जाएगा क्योंकि एक पेड़ भी लगाओगे तो वह तुम्हारे लिए स्वर्ग को जन्म देगा। लेकिन प्रवचनकारों की दुकान चतु:श्लोकी गीता बताने से नहीं चल सकती। वे भजन कीर्तन कराते हैं, भक्तिरस में मगन करा देते हैं लेकिन जो पुराणों में प्रवचनकारों ने प्रतिरोध की परम्परा से जुड़कर बातें कही हैं उसे आज के साधु महात्मा नहीं बताते। अवधूत भरत ने राजा को जिस तरह फटकारते हुए जो बातें कहीं, उनका मर्म वे नहीं उघाड़ते। ऐसे कथित महात्माओं के दुर्विनियोजनों के चलते पुराणों में धार्मिक आडम्बर से जुड़े हिस्सों के पाठ जुड़ते चले गये हैं।

पुराणों का शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष और कुछ सवाल

अठारह पुराणों और अधिकांश उपपुराणों के इस विशाल और अद्वितीय साहित्य भण्डार में जो एक अनोखी बात पुराणों की अंत:पाठीयता है। सारे महापुराण एक दूसरे का संदर्भ देते हैं, कुछ पुराण तो सारे महापुराणों में से एक एक को ले कर उसकी रूपरेखा और श्लोकसंख्या

एक चतु:श्लोकी गीता भी है, जिसमें चार श्लोकों में कृष्ण ने यह कहा है कि बेटा होने से कोई नहीं तर जाता है। बेटा नरक में भी गिरा सकता है, लेकिन पेड़ जो लगाएगा वो ज़रूर तर जाएगा क्योंकि एक पेड़ भी लगाओगे तो वह तुम्हारे लिए स्वर्ग को जन्म देगा। ... पुराणों में प्रवचनकारों ने प्रतिरोध की परम्परा से जुड़कर बातें कही हैं उसे आज के साधु महात्मा नहीं बताते। अवधूत भरत ने राजा को जिस तरह फटकारते हुए जो बातें कहीं, उनका मर्म वे नहीं उघाड़ते। ऐसे कथित महात्माओं के दुर्विनियोजनों के चलते पुराणों में धार्मिक आडम्बर से जुड़े हिस्सों के पाठ जुड़ते चले गये हैं।

तक बताते जाते हैं। 'पुराणं पंचलक्षणम्' को सत्यापित करते हुए सभी पुराणों में अनेक विषयों और उनके प्रतिपादन की समानता पुनरावृत्ति की सीमा तक है। नरक व उसमें दी जाने वाली यातनाओं के विस्तृत विवरण लगभग सभी पुराणों ने दिये हैं।

पुराण वेदों की दुहाई तो ख़ूब देते हैं, पर उस वैदिक धर्म यज्ञपरकता को पूजापरकता में रूपांतरित कर देते हैं। इंद्र, वरुण, अग्नि उषस् आदि वैदिक देवताओं के स्थान पर यहाँ ब्रह्म, विष्णु और महेश की त्रयी है या महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली जैसी देवियाँ हैं।

एक ओर अटूट धार्मिक आग्रह तो उसके साथ एक व्यापक सेकुलर दृष्टि— दोनों धाराएँ पुराणों में एक साथ बहती दिखती हैं। पुराण ईसा के बाद की पूरी डेढ़ सहस्राब्दी में घटित होती गयी एक बड़ी धार्मिक क्रांति के साक्ष्य हैं। अवतारवाद में अकंप्य आस्था के साथ पुराण देवी-देवताओं की संख्या में निरंतर वृद्धि भी करते चले जाते हैं। मंदिर, तीर्थयात्रा, यात्रामहोत्सव, तरह-तरह के उत्सव और त्यौहार के विवरण सभी पुराणों में भरपूर हैं। क्षेत्रीय परम्पराओं के साथ अलग अलग समुदायों के रीति-रिवाजों के भी ब्योरे इनमें प्रचुर हैं। सारे पुराण कथित हिंदूधर्म की भव्यता, उत्सवधर्मिता, समन्वयभावना का जितना गहरा साक्ष्य देते हैं, उतने ही वे इस धर्म में आ गयी तमाम विकृतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कर्मकाण्डों के भी दस्तावेज़ हैं।

मैं ऐसे कुछ विद्वज्जनों को साक्षात् जानता हूँ, जिनकी भागवत पर एक सप्ताह प्रवचन करने की कमाई पाँच से दस लाख तक है। मैं ऐसे तपस्वी गुणीजनों को भी साक्षात् जानता हूँ, जो भागवत के चलते फिरते ज्ञानकोश हैं, वे भागवत पर अद्‌भुत प्रवचन भी करते है, वे उसकी अनोखा मीमांसाशास्त्र (हर्म्युनिटिक्स) रच लेते हैं। पर भागवतप्रवचन करने का वे पैसा नहीं लेते। भागवतप्रवचन कर के करोड़पति बन जाना सम्भाव्य है, भागवत को जी कर भागवतमय हो जाना भी सम्भाव्य है।

पुराणों की संख्या लगातार बढ़ती गयी है। जो नये पुराण लिखे गये, उनमें सामग्री भी पूरी तरह नयी है। ये पुराण जो पुराना हो कर भी नया होता जाता है— यास्क के इस पुराणलक्षण को सत्यापित करते हैं। यह भी सत्य है कि इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र के अध्येताओं को पुराणों से अभी भी महत्त्वपूर्ण दुर्लभ जानकारियों और तथ्यों का जख़ीरा मिल सकता है। पुराण एक ऐसी धरोहर है, जिसे आधुनिक समाज ने और कथित आधुनिक अध्येताओं ने रद्दी की टोकरी में फेंकने लायक़ मान लिया है। वासुदेव शरण अग्रवाल के बाद पुराणों पर कदाचित् कोई बड़ा शोध नहीं हुआ। अनेक पुराणों में ऐसी बातें हैं, जो आज अनर्गल लगती हैं। पण्डे पुजारियों ने अपने पेशे की दृष्टि से इनमें अनुकूलन और दुर्विनियोजन भी अनेक स्थलों पर किया है। पर क्या यह सत्य नहीं कि पुराणों ने अनेक जीते जागते चलते फिरते विश्वविद्यालय निर्मित किये, भारतीय समाज के एक बड़े हिस्से के करीब डेढ़ हज़ार साल के इतिहास, रीति-कुनीति, नीति-अनीति, सभ्यता और संस्कृति का अद्वितीय लेखा-जोखा भी पुराण रहे हैं?

क्या सारे के सारे पुराण अनर्गल हैं— जैसा ऋषि दयानंद (ऋषि बन जाने के बाद) कहने लग गये थे? क्या पुराणों को केवल प्रवचनकर्ताओं और धर्म के नाम पर धंधा करने वालों के लिए छोड़ कर बिसार दिया जाना हमारे लिए उचित था?

चिरपुरातन के साथ निरंतर चिरनवीन बने रहना पुराणसाहित्य की पहचान थी। केवल पुरातन या केवल नवीन के आग्रह में इस पहचान के विलुप्त होने की दुस्सम्भावना है।

संदर्भ

अग्निपुराण (1900), (सं.) हरिनारायण आप्टे, आनंदाश्रम संस्कृत सीरीज, आनंदाश्रम प्रेस, *पुणे.*

..............(2009), (सं.) मैत्रेयी देशपाण्डे, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, नयी दिल्ली.

आदिपुराण (1929), (पत्राकार), अनु. श्यामसुंदरलाल त्रिपाठी, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई.

उपनिषत्सङ्ग्रह: (1980),— (सं.) जगदीशशास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1970, पुनर्मुद्रण.

उपपुराणदिग्दर्शन (2007), लीलाधर वियोगी, आइ.बी.ए. पब्लिकेशंस, अंबाला छावनी.

कपिलपुराण (1981), (सं.) श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती, वाराणसी.

कल्किपुराण (1963), (सं.) जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, 1890 (2) सं. दामोदर शास्त्री, भारत धर्म महामण्डल काशी.

गरुड़पुराण (1925), खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई.

देवीपुराणम् (1976/2009), (सं.) पुष्पेंद्र कुमार शर्मा, श्रीलालब.शा.रा.सं.वि.

देवीभागवत , खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई, 1924.

धर्मसंहितादशकम् (2006), भाग 1 तथा 2, संपादक तथा प्रकाशक— रमेशकुमार पांडे, दिल्ली.

नरसिंहपुराण (1986), (सं.) रणजीतसिंह सैनी, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, नयी दिल्ली.

नांदिपुराण (2010), (सं.) लक्ष्मीनारायण नंदवाना, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली.

नीलमतपुराण (1994), (सं.) वेदकुमारी घई, जम्मू ऐंड काश्मीर एकेडेमी ऑफ़ आर्ट, कल्चर ऐंड लैंग्वेज, श्रीनगर, प्रथम (सं.) 1993, द्वि. (सं.).

पद्मपुराण (1892), (सं.) विश्वनाथ नारायण, आनंदाश्रम संस्कृत सीरीज, आनंदाश्रम प्रेस, पुणे, 1892.

पुराणपारिजात: (2005), म.म गिरिधरशर्मा, लाल.ब.शा.सं.वि., .

बलदेव उपाध्याय (1985), *भारतीय साहित्य का अनुशीलन,* शारदा संस्थान, वाराणसी.

मत्स्यपुराण (1981), (सं.) नागशरणसिंह, नागप्रकाशन, (एच.एच. विल्सन के संस्करण का पुनर्मुद्रण) .

मिथिलामाहात्म्यम् (2013), बृहद्विष्णुपुराणीयम्, सं. धर्मानाथझा, संशोधक- श्रीपति त्रिपाठी, का.सिं.सं.वि.वि., .

राधावल्लभ त्रिपाठी (2015), *पेड़ों की दुनिया में,* माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोधसंस्थान, भोपाल.

वराहपुराण (1981), (सं.) श्रीनिवास शर्मा शास्त्री, प्राच्य वाङ्मयप्रकाशन, कासगंज.

वामनपुराण (2069), गीताप्रेस गोरखपुर, सातवाँ पुनर्मुद्रण, (सं.).

स्कंदपुराण (1908), खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई.

साम्बपुराणम् (2011), (1) खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, 1899 (2) सं. पं. गौरीकान्तझा, इलाहाबाद.